प्राचीन हिन्दी जैन साहित्य ग्रन्थ-माला—प्रथम पुष्प

स्व० कविवर पंडित दौलत राम जी विरचित

दौलत विलास

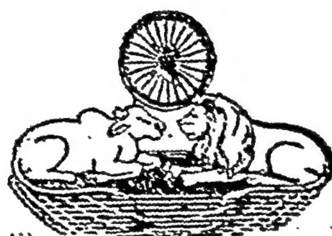
सम्पादिका:—

श्रीमती सौ० सरोजनीदेवी जैन

धर्मपत्नी श्रीमान् सुमतिचन्द्र जी जैन

कायमगंज (फर्रुखाबाद)

उ० प्र०



वी०नि०सं० २४८१ वि०सं० २०१२ क्रिष्टाब्द १९५५

प्रकाशक:—

श्री अ० वि० जैन मिशन

अलीगञ्ज (एटा)

उ० प्र०

प्रथम संस्करण २०००

मूल्य सदुपयोग

सेवार्भ,

श्रीमान् / श्रीमती ....

....

विनीत—

सुमति चन्द्र जैन
सुरेन्द्र चन्द्र ,,
सतीश चंद ,,

ऋषभगञ्ज
दिनाङ्क............

दो शब्द

भारतीय संस्कृति को समुन्नत बनाने के लिए जिस प्रकार जैन सन्तों एवं सम्राटो ने बहुमुखी योगदान दिया है, उसी प्रकार जैन मनीषियोंने हिन्दी साहित्य को भी उन्नतिशील एवं समृद्ध बनाया है। जैन कवियों और लेखकों ने हिन्दी के आदि काल से अब तक अपनी विविधि अनूठी रचनाओं द्वारा हिन्दी–साहित्य के विविधाङ्गों को समलंकृत किया है, जिन्हें अन्यत्र पाना दुर्लभ है। उदाहरण रूप में कविवर बनारसीदासजी की आत्मकथा 'अर्द्ध कथानक, ही लीजिये; यह हिन्दींमें ही नहीं अपितु समग्र विश्व वाङ्मय में अपने विषय की पहिली कृति है।

जिस प्रकार हिन्दी साहित्य में हमें कबीर, सूर, तुलसी जैसे कविहृदयों के पद मिलते हैं, उसी प्रकार जैन कवियों ने भी मार्मिक और गम्भीर–किन्तु आध्यात्मरससे ओतप्रोत पदोंको रच कर उनमें चार–चाँद लगा दिये हैं। जैन पदावली भक्तिरस तक ही सीमिति नहीं रही, बल्कि उसमें आध्यात्म जैसे नीरस विषय को भी जैन कवियों ने ऐसा सरस और संगीतमय बना दिया है कि भव्य–जन उनको गाते हुये अपूर्व आत्माह्लादका अनुभव करते हैं।

जैन पदकारों में कविवर दौलतराम जी का अपूर्व स्थान है। उनकी सिद्धहस्त परमार्जित लेखनी द्वारा लिखे गये पद हिन्दी साहित्य की अक्षय–निधि हैं। वे पर्याप्त प्रचलित रहे, परंतु अब कुछ समय से उनकी कमी-सी दृष्टिगत होने लगी है।

पं०पन्नालाल जी वाकलीवालने इनकी रचनाओं का संग्रह "दौलतविलास प्रथमभाग" के नाम से ईस्वी सन १९०४में प्रकाशित किया था। यद्यपि पंडित जीने पदों के संग्रह करने में कुछ

उठा नहीं रक्खा था तथापि बहुत से पद अप्रकाशित रहे। उनके पश्चात् कई संस्करण जैसे कलकत्तासे प्रकाशित "दौलतपद संग्रह" निकले। ये सभी अपूर्ण रहे। प्रस्तुत संग्रहभी पूर्ण होने का दावा नहीं करता। हां, इसमें जहां तक मुद्रित अमुद्रित प्रतियों से सहायता मिल सकी है, वहां तक कविजी की सभी रचनाओं का संग्रह किया गया है- किसी को छोड़ा नहीं गया है। संभव है कि इसके आगामी संस्करणों में दौलतरामजी की कुछ और रचनायें प्रकाशमें आवें।

प्रस्तुत संग्रह में प्रयत्न किया गया है, कि जितने भी अधिक से अधिक पद प्राप्त हों वह दिये जांय। समझ नहीं सकती कि यह प्रयास कहां तक सफल हुआ है। इन पदों के संकलन में विषयक्रम का ध्यान अवश्य रक्खा गया है। प्रथम जिनेन्द्र स्तुति सम्बन्धी विनती व पदों का संकलन है। पश्चात् सभी स्फुट पद दिये गये हैं। साथ में कवि जी की अन्य रचनायें जैसे छहढाला आदि हैं। पुरुषोंकी अपेक्षा महिलाओं में गाने की प्रथा अधिक है, आशा है वह इन्हें अधिकतर अपनायेंगी।

"आज गिरिराज निहारा" इस पद में जिस प्रकार सम्वत् दिया गया है ठीक वही विधि छहढाले में दिये गये सम्वत की है, तथा भाषा शैली भी अनुरूप है। इस प्रकार छहढाला पदरचयिता पं० दौलतरामजी की ही कृति सिद्ध होती है।

पद आदि के अर्थों को सुगम बनाने के लिये कठिन शब्दों के अर्थ फुटनोट में दिये गये हैं, कहीं कहीं किन्हीं गूढ़ पंक्तियों का भावार्थ भी दे दिया गया है। कदाचित इनमें कोई त्रुटि रह गई हो तो पाठकगण सुधारने की कृपा करें, इस संस्करण के प्रचार से समाज को ज्ञान-लाभ हो यही श्रमसार्थकता है। इतिशम्

रक्षाबंधन
सन १६५५

सरोजनी देवी जैन

प्रस्तावना

निम्न प्रस्तावना श्री मान् स्व० पं० पन्नालालजी बाकलीवाल ने 'दौलतविलास प्रथमभाग' को सर्व प्रथम प्रकाशित कराते हुये उसके प्रारम्भ में दी थी। इसके एक बारगी अवलोकन से हमारे पाठकों को सहज ही ज्ञान हो जायगा कि श्री पन्नालालजी के अनवरत श्रमने हमारे स्मरणीय कवि दौलतरामजी की लुप्त होती हुई रचनाओं एवं उनके परिचय को सुरक्षित रखा है। समाज और साहित्य ऐसे उद्धारक सेवी का कितना ऋणी है, शब्दों में नहीं कहा जा सकता।

यथार्थ में इस प्रस्तावना का ऐतिहासिक महत्व है, अतः इसे शब्द प्रति शब्द धारावाही उद्धृत किया जाता है........

"वर्तमान समयमें हिंदी भाषाकाव्यके जितने ग्रन्थ देखनेमें आते हैं उनमेंसे शतांश भी ऐसे ग्रन्थ नहीं निकलैंगे, जिनमें कि वैराग्य वेदान्त नीति वा भक्तिरसका आस्वाद मिल सकै, ऐसे ग्रन्थ जिनमें कि अलङ्कार नायकादि भेदोंकी भरमार है हजारों मिलते हैं, तथा विलासितापूर्ण संसारमें दिनपर दिन नये बनते ही चले जाते हैं इन ग्रन्थों से सर्वसाधारणको कितना लाभ पहुंचता है सो तो इन ग्रन्थोंके बनाने और प्रकाश करनेवाले ही जान सकते हैं, परन्तु इस स्थलपर कविवर भूधरदासजीकृत दो सवैये पाठकोंको सुनाये बिना नहीं रहा जाता, यथा—

राग उदै जग अंध भयो सहजैं सब लोगन लाज गमाई।
सीख बिना सब सीखत हैं विषयानके सेवनकी सुघराई॥
तापर और रचैं रस-काव्य कहा कहिये तिनकी निठुराई।
अन्ध असूझनकी अँखियानमें झोंकत है रज राम दुहाई॥१॥

हे विधि ! भूल भई तुमतैं समझे न कहां कस्तूरि बनाई।
दीन कुरङ्गनिके तनमें तृण दन्त धरें करुणा नहिं आई॥
क्यों न रची तिन जीभन जो रसकाव्य करें परकों दुखदाई।
साधुअनुग्रह दुर्जनदण्ड दुहू सधते विसरी चतुराई॥२॥

हर्षका विषय है कि ऐसे समयमें जब कि भाषासाहित्य केवलमात्र शृङ्गाररसके भरोसेपर ही जी रहा था, जैन कवियोंने उसमें वेदांत, वैराग्य, नीति और भक्तिरसका प्रचार करनेके लिये अतिशय प्रयत्न किया है और आजतक जितने जैनकवि हुये हैं करते आये हैं, क्यों कि जैन-कवियोंके जितने ग्रन्थ आजतक देखने व सुननेमें आये हैं किसीमें भी विषयान्ध करनेवाले रसोंका प्रवेश नहीं हुआ है। बल्कि यों कहना चाहिये कि उनके इस बातकी दृढ़ प्रतिज्ञा ही थी जो कि उनके बनाये हुये समयसार नाटक, प्रवचनसार, बनारसी-विलास, द्यानतविलास, भूधरविलास, बुधजनविलास, ब्रह्मविलास, बुधजन सतशयी, वृन्दावन सतशयी आदि ग्रन्थोंके देखनेसे भलेप्रकार ज्ञात हो सक्ती है।

पण्डित हेमराजजी पांडे, रूपचन्दजी पांडे, बनारसीदासजी, भगवती दासजी, द्यानतरायजी, भूधरदासजी, रामचन्द्रजी, सेवारामजी (जाट), जिनवल्लभ, (मुसलमान), वृन्दावनजी, दौलतरामजी, बिहारीलालजी, आदि बडे २ भाषाकवि जैनियोंमें हो गये हैं, जिनकी काव्यशक्ति प्रशंसनीय थी। इनमेंसे कविवर पण्डित दौलतरामजी कवि इस शताब्दीमें ही हो गये हैं, जिन्होंने उपदेश, अध्यात्म और भक्तिपर अनेक पद व फुटकर कविता बनाई हैं, उनहीका संग्रह यह '**दौलतविलास प्रथमभाग**' है, इस ग्रन्थके विषयमें कहनेसे पहिले हम उक्त कविवरके विषयमें लिखकर कुछ परिचय देना चाहते हैं।

उक्त कविवरका जन्म विक्रम सम्वत् १८५० और ५५ के बीचमें हुवा था, इनकी जन्मपत्री सन् १८५७ के गदरके समय भागते हुये इनके पुत्रादिकसे गिर पड़ी इस कारण इनकी जन्मतिथिका निर्णय होना कठिन है, परन्तु उक्त कविवरके सुपुत्र टीकारामजीके द्वारा मालूम हुवा है कि इनका

जन्म विक्रम सम्वत् १८५५ या ५६ की सालमें हाथरस शहरमें ।

कविवरके पिताका नाम लाला टोडरमलजी जाति पल्लिवाल और गोत्र गंगीटीवाल था, परन्तु लोक इन्हें बहुधा फतेहपुरी कहा करते थे।

इनके पिता दो भाई थे। छोटेका नाम चुन्नीलालजी था। आप भी हाथरसमें ही रहते थे, और दोनों भ्राता कपड़ेका रोजगार करते थे। कवि दौलतरामजीके श्वसुरका नाम चिन्तामणि मुकाम अलीगढ़ तथा कामबजाजीका था।

यद्यपि इनके पिता कपड़ेका रोजगार करते थे, परन्तु इनकी रुचि बालकपनसे ही विद्याध्ययनमें विशेषतर थी, इस कारण इनके पिताने भी हर्षके साथ इन्हें विद्याध्ययनमें ही लगे रहने दिया किन्तु इन्होंने किस गुरुके पास विद्याध्ययन किया सो विदित नहीं होता, इसके अतिरिक्त दन्तकथासे यह भी सुना गया है कि उक्त कविवरने अलीगढ़में छींटे छापनेका काम भी किया था, जिस समय छींटका थान छपनेकेलिये बैठते थे, उस समय चौकीपर गोमट्टसार वा त्रिलोकसार, आत्मानुशासनादिमेंसे किसी ग्रंथको विराजमान कर लेते थे सो इधर काम भी करते जाते थे, उधर पत्रमेंसे श्लोक गाथायें देखदेखकर कंठाग्र करते जाते थे। सुनते हैं कि प्रतिदिन ६०–७० व कभी–कभी १०० श्लोक व गाथायें (प्राकृतके आर्याछन्दः) कंठाग्र कर लिया करते थे। प्रातःकाल और शामको शास्त्रस्वाध्यायमें लगे रहते थे।

सम्वत १८८२ या ८३ की सालमें मथुरानिवासी श्रेष्ठिवर्य राजा लक्ष्मणदासजी सी० आई० ई०के पिता श्रेष्ठिवर्य मनीरामजी साहब पंडित चंपालालजीके साथ कारणवशात् हाथरस पधारे थे, वहांपर उक्त कविवरको मन्दिरजीमें गोमट्टसारजीकी स्वाध्याय करते देख बहुत ही खुश हुये और इन्हें अपनेसाथ मथुराजी ले गये, वहांसे कुछ दिन बाद ये शासनी वा लश्करमें (ग्वालियरमें) आकर रहने लगे थे।

उक्त कविवरके दो पुत्र हुये जिनमेंसे बडे लाला टीकारामजी आज कल लशकरमें रहते हैं, और छोटा भाई अपनी प्रियपुत्री और स्त्रीको छोडकर इस असार संसारसे कूचकर गये। कहा जाता है कि इन दोनों पुत्रोंका जन्म

आपसे जिनका समागम विक्रम संवत् १८८२ और १८८८ में हुआ था।

सुनते हैं कि, सं० कविवरके समयमें आगरेमें अध्यात्मरसके-प्रेमी सतमिका आदि के कर्ता, पं० ...जी, शुद्धदृष्टिप्रकाशके कर्ता पं० बुधजनजी, काशीजी-समवशरण पाठ चौबीसी पूजनके कर्ता कविवर पं० वृन्दावनजी, ईसागढ़के पं० भागचन्दजी, दिल्लीके पं० जगतरामजी, तथा रत्नकरण्डश्रावककी वचनिकाके कर्ता पं० सदासुखदासजी, मूलाचारके पं० ...जी व अनेक ग्रंथोंके भाषा अनुवाद करनेवाले पं० मिहिरचन्दजी, आगरेके ढूंढिया साधु रतन-चन्दजी आदि विद्वान् हो गये हैं।

इनका स्वर्गवास मगसिर वदि अमावस्या (संवत् १९२३ या २४) को ठीक मध्याह्नके समय देहलीमें हुआ था। आश्चर्य है कि आपको अपनी मृत्युका समय मालूम हो गया था, इसकारण आपने समस्त कुटुम्बि-योंको ६ दिन पहिले कह दिया था कि आजसे छट्ठे दिन मध्याह्नके पश्चात् मैं इस शरीरसे निकलकर अन्य शरीरधारण करूँगा। उसी दिनसे आप धर्मध्यानमें लवलीन होकर नियमानुसार सन्यास धारण कर जिस दिन इन्द्रप्रस्थसे इन्द्रपुरीको पधारे ठीक उसी दिन गोम्मटसारजीकी स्वाध्याय करते थे सो पूर्णकर दिया, और पञ्चनमस्कार मन्त्रका उच्चारण करते २ ही उक्त समयपर समस्त कुटुम्ब परिवारको तथा जैनसमाजको शोकसागरमें छोड़कर स्वर्गको सिधार गये।

पाठक महाशय! इनमें क्या २ गुण थे सो हम तुच्छ लेखनीसे नहीं लिखे जा सकते, किन्तु इनकी कविताको आद्योपान्त पढ़नेसे आपको भले प्रकार विदित हो जायगा कि ये कैसे विद्वान थे?

इन्होंने दो जकड़ियाँ और छहढालाके सिवाय सैकड़ों पद बनाये हैं। हर देशमें अभी इनके गाये जाते हैं, परन्तु खेद है कि हमारे जैनीभाइ-योंकी अज्ञानता और प्रमादसे कहीं भी समस्तपदोंका संग्रह नहीं है। हमने एक २ पदकेलिये एक २ 'दौलतविलास' देनेकी प्रतिज्ञाका इस्तहार दिया तौ भी हमको केवलमात्र ११३ पद, दो जकड़ी और एक छहढाला और एक स्तुति

(दर्शन) मिली है, जो कि इस पुस्तकमें संग्रहित हैं। हमारी कई वर्षोंसे इच्छा थी कि दौलतरामजीकी समस्त कविताका संग्रह करके बडे २ पंडितोंसे शुद्ध करवाके प्रगट कर दी जाय परन्तु खेद है कि हमारी इच्छा पूर्ण नहीं हुई, बलके जो ११३ पद हमको प्राप्त हुये वे भी इतने अशुद्ध और पाठभेदके मिले कि जिनका शुद्ध करना हम सरीखे अल्पज्ञोंकी शक्तिसे बाहर है।

इन दो वर्षोंमें इन गम्भीराशय गर्भित आध्यात्मिक पदोंके समझनेवाले किसी विद्वान्का समागम भी नहीं हुवा जो उनके सन्मुख रखकर शुद्ध कराते, इधर 'जैनहितैषी' द्वारा दौलतविलासके मुद्रित होनेकी खबर छपनेसे जगहँ २ से फरमायसें आने लगी कि "दौलतविलास छप गया होगा, जल्दी भेजो सब नहीं छपा हो तो जितना छपा हो उतना ही भेजो, इत्यादि" लाचार गतवर्षसे मैंने दो महाशयोंकी सहायतासे यथाशक्ति शुद्ध करना प्रारंभ किया, परन्तु कहांतक शुद्ध किया जाय कौनसे पाठको शुद्ध वा असली समझा जाय कुछ भी समझमें नहीं आया, तब जैसा पाठ हमको मिला और अपनी तुच्छ बुध्यनुसार शुद्ध भाषा वही रखकर छपाया है।

हमारी इच्छा थी कि समस्त पदोंकी रागरागनी प्रत्येक पदपर लिखी जानी चाहिये परन्तु जहां २ से हमें पद मिले भिन्न २ रागिनियें लिखी हुई नहीं मिली। किसी अच्छे गवैये भोजक वा भाईका भी समागम नहीं हुवा जो वे रागनियें ठीक कराकर लिखी जातीं। लाचार हमने सब रागिनियें उठाकर उनकी जगह पदोंकी संख्या मात्र डाली है, आशा है कि कोई सङ्गीत विद्याका जानकार भाई इन पदोंपर वास्तविक रागरागिनी लिखकर भेजेंगे तो दूसरी बार रागरागिनीसहित छपाया जायगा।

कई मित्रोंने पदोंका आशय स्पष्ट हो जानेकेलिये टिप्पणी करनेकी सलाह दी, और टिप्पणी लगाना भी प्रारंभ किया परन्तु इन पदों वा छहढाला आदिकी कविता ऐसी गम्भीर है कि विना पूरी पूरी टीका किये टिप्पणी मात्रसे आशय समझा देना कठिन है, लाचार उत्तरार्द्धमें टिप्पणी लगाना भी व्यर्थ समझकर छोड़ दिया।

इस पुस्तकसे पहिले अनेक भाइयोंने थोड़े बहुत पद तथा छहढाला

संशोधन किया है, परन्तु वे इतने अशुद्ध थे कि उनके संशोधन करने-
वाले महाशयोंको बहुत कुछ लिखना पड़ा है, परन्तु इन पदोंके शोधनेसे हमें
अनुभव हो गया कि दौलतरामजीकी कविताको शुद्ध करना सहज नहीं
है, क्योंकि अनेकबार परिश्रम करनेपर भी प्रायः सभी पदोंमें कुछ न कुछ
अवश्य भूल रही होगी, और अनेक जगह हम लोगोंकी समझमें नहीं
आनेसे यथावत् रहने (?) ऐसा चिह्न भी कर दिया है सो विशेष बुद्धिमा-
नोंको यह पद शुद्ध जैसा हो वैसा हमारे पास अवश्य ही भेजना चाहिये.

जिस प्रकार हम उक्त कविवरकी समस्त कविताको संग्रह करके पूरा
'दौलतविलास' छपाना चाहते थे और लाचारीसे अपूर्णभाग नाम देकर
अपूर्ण ही छपाना पड़ा उसी प्रकार उक्त कविवरका जीवनचरित्र भी हम
सविस्तार छपाना चाहते थे. जिसके लिये कई बार इश्तहार भी दिये,
आन्दोलन भी किया परन्तु खेद है कि किसी भी जैनी भाईसे नहीं बना
कि कविवरकी संततिवाले वृद्ध भाइयोंसे पूछ २ कर उनका यथार्थ जीव-
नचरित्र संग्रह करके भेजे—लाचार—लश्करनिवासी बैया मोतीलाल-
जीकी कृपाकटाक्षसे जो कुछ प्राप्त हुआ वही हमने प्रकाशित किया है.
जिसकेलिये उक्त भाईसाहबको कोटिशः धन्यवाद दिया जाता है. और
फिर भी आशा की जाती है कि उक्त भाई साहब अथवा अन्य कोई
महाशय उक्त कविवरका सविस्तार जीवनचरित्र संग्रह करके भेजेंगे तो
पाठकोंका दृष्टिगोचर हो सकेगा।

अन्तमें उन भाइयोंको भी कोटिशः धन्यवाद दिया जाता है कि,
जिन्होंने कई २ नये पद संग्रह करके भेजे तथा जिन भाइयोंने अशुद्ध
पद भेजे और 'द्यानत' की जगहँ 'दौलत' लिखके भेजे उनको भी धन्यवाद
देकर भाइयोंसे प्रार्थना की जाती है कि अल्पज्ञकी भूलचूक होनेका अपराध
क्षमा करके जिस प्रकार ये पद शुद्ध हो सकें कृपा करेंगे।

जैनी भाइयोंका दास,

मुम्बई,
ता० २२-८-१९०४ ईस्वी.

पन्नालाल बाकलीवाल

दातार का परिचय !

जिन महाभाग की पावन-स्मृति में हिन्दी जैन साहित्य की यह अध्यात्म-रस से छलछलाती हुई अपूर्व कृति पुनः प्रकाश में आ रही है, उनके विषय में कुछ जानने की इच्छा पाठकों के हृदय में वलवती हो, तो कोई आश्चर्य नहीं! वह स्वयं अध्यात्म-रसिक थे। अतः उनकी आत्मतुष्टि के उपयोग रूप में यह रचना सार्थक ही है।

उत्तर प्रदेश के जिला फ़र्रुखाबाद में कायमगंज एक छोटा सा नगर है। जैन यात्री जो कम्पिला तीर्थ जाते-आते हैं। उन्हें कायमगंज होकर ही जाना-आना पड़ता है। इसी कायमगंज में यदुवंशोद्भव बुढ़ेलान्वयी एक धर्मवत्सल जैन कुटुम्ब रहता है, जोऊंची पौरवाले नाम से प्रसिद्ध है। **स्व० श्री लालताप्रसाद जी** का जन्म वि०सं०१९३९ शाके १८०४ माघ शुक्ल चतुर्थी को इसी कुटुम्व में हुआ था। वह जन्मजात प्रखर-बुद्धि थे। उनका गणित और ज्योतिषका ज्ञान उच्चकोटिका था। स्थानीय कॉलेजके छात्रगण प्रायः गणित के प्रश्न लेकर आते और उनसे हल करवा ले जाते थे। कर्म सिद्धांतको समझने के लिये गणित में उल्लेखनीय गति होना ही चाहिये। उनसे सैद्धांतिक चर्चा करना भी, इसी लिये बड़ा मनो-रंजक होता था। ललितकलाओं से भी उन्हें अभिरुचि थी। नाट्यकला में तो वे निष्णात थे। अपने समय के स्थानीय नाट्य मण्डल के तो जैसे आप प्राण थे। आप एक कुशल अभिनेता ही नहीं वल्कि पटु निर्देशक भी थे।

सम्यक्ज्ञानका अर्जन और प्रसार ही मानवता की सार्थकता का एकमात्र साधन है। स्व० ललताप्रसाद जी ने इस सत्यको पहिचान कर उसे अपने जीवन में मूर्तिमान बनाया था। वह स्वयं ज्ञानार्जन करके संतोष न कर बैठे, बल्कि उन्होंने उसके प्रसार के लिये सतत उद्योग किया। इस युग के आदि में जैन समाज में एक बड़ा ही विचित्र आन्दोलन उठ खड़ा हुआ था। पुराने विचार के लोग कहते थे कि जैनग्रंथ छपाये न जावें और प्रगतिशील बुद्धिवादी जैन उनके छपाने पर तुले हुये थे। यह संघर्ष बहुत दिनोंतक चला, पर अन्त में विजय सत्य की हुई—जैन ग्रन्थ निर्बाध छपने लगे। उस समय समाज के कोपभाजन बनकर ग्रन्थ छपाना हर एक का काम न था। स्व० श्री ललताप्रसाद जी ने इस आन्दोलन में सक्रिय भाग लिया। उत्तर भारत में जैन ग्रन्थ छापने के प्रश्न को स्व० बाबू सूरजभान जी ने आगे बढ़ाया था। अतः श्री ललताप्रसाद जी ने इन्हीं सूरजभानु जी के उर्दू ट्रैक्ट "ज्ञान सूर्योदय" का हिंदी में अनुवाद करके उसे प्रकाशित कराया। लोगों ने उसे ऐसा पसंद किया कि श्री सूरजसिंहजी ने सन् १९१४ में उसका दूसरा संस्करण प्रकाशित किया था। 'पुराण-परीक्षा' 'लावनी कर्त्ता-खंडन' आदि धार्मिक एवं 'भरतपुर की ऐतिहासिक लड़ाई सर्व साधारण रचनायें उन्होंने रची थी।

सम्यग्ज्ञानकी आराधना मानवीय चारित्रको समुज्ज्वल करती ही है। श्री ललताप्रसादजी भी चारित्र धर्म को पालने में सावधान रहे थे। अनन्त चतुर्दशी आदि व्रतों के साथ उन्होंने रत्नत्रयव्रत विधान वर्ष में तीन बार (माघ, चैत्र और भाद्रपद में) किया था। व्रतोंपवास करते हुये उनका तात्विक ज्ञान भी विस्तृत रूप से प्रकाशित होता था। गुणस्थानों की चर्चा करते हुए १२वें १३वें गुणस्थानों की व्याख्या करने में यह ऐसे तन्मय हो जाते कि

दौलत विलास



स्व० श्रीमान् साहु लालता प्रसाद जी जैन
कायमगञ्ज (फर्रुखाबाद)

जन्मः—
माघ शुक्ल चतुर्थी
वि०सं० १६३६

स्वर्गवासः—
मार्गशीर्ष शुक्ल अष्टमी
वि०सं० २००६

उन्हें समय का बोध भी न रहता था। वह एक अनुभव। पुरुष थ। आजके युवक उनके आदर्श से बहुत कुछ सीख सकते हैं। निस्स-न्देह मानव जीवन सच्ची श्रद्धा, सच्चे ज्ञान और सच्चे चरित्रके रत्नों को पाकर ही मूल्यमयी बनता है।

जो आत्मा में जागरूक है, वह वहिर्दृष्टा नहीं रहता-वह अन्तर में चेतना का साक्षात्कार करता है। श्री ललताप्रसाद जी की इहजीवनलीला के अंतिम क्षण इस बातको पुष्ट करते हैं। यूं तो वह स्वांस रोग के प्रकोप से अपने जीवन के अंतिम क्षण से लगभग १२ वर्षों पहिले से पीड़ित थे, परंतु फिरभी वह आत्मज्ञान में जागृत थे। रोग-शोक, जय-पराजय सब ही स्थितियों में जो समचित्त रहे वही तो मनीषी है। स्व०श्री ललताप्रसाद जी ने इसे सत्य कर दिखाया था। मृत्यु से दस मिनट पहले भी जिनका स्वर अविरोध था, और वह अन्तिम क्षणों तक जागरूक रहे। णमोकार महामंत्र के पावन उच्चारण के साथ उनकी पवित्र आत्मा लगभग ७०वर्ष की आयु में अपने अस्थिर शरीर और आतमीय जनोंसे विलग हुई! यह दुखद घटना दिनांक ८ दिसम्बर १९५१ को घटित हुई थी।

प्रस्तुत ग्रन्थ 'दौलतविलास' उन महाभाग की स्मृति में उनकी धर्मनिष्ठ पत्नी द्वारा प्रकाश में आरहा है। उनकी धर्मपत्नी साध्वी प्रकृति की महिला हैं। गृहकार्य का संचालन करते हुये भी वह व्रत-उपवास, अतिथि सत्कार आदि करने में सावधान हैं। उनकी संतान में तीन पुत्र और एक पुत्री हैं। पुत्रों में ज्येष्ठ पुत्र श्री सुमतिचन्द्र जी हैं और सर्वलघु श्री सतीशचन्द्र जी, मध्यवर्ती श्री सुरेन्द्रचंद्र जी जैन हैं। इनकी उदारता इस ज्ञान-दान में कारणभूत है, जो इनके लिये पुण्यबंध का श्रोत तो है ही, परंतु इससे जैन हिंदी साहित्य की एक अप्राप्य अनुपम कृति सुगम-सुलभ

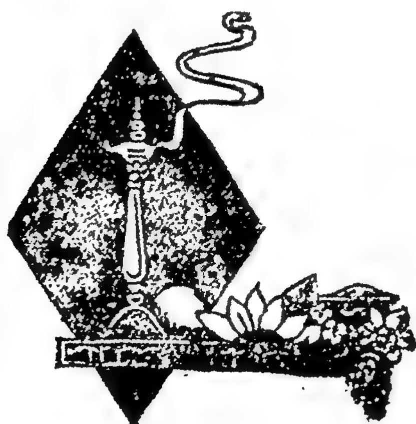
हो रही है; इसीलिए यह धर्म प्रभावना का भी सार्थक साधन बना है। 'मिशन' उनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापन करता है।

अंत में यह प्रगट करते हुए भी हमें गौरव और हर्ष है कि इस कृति की सटिप्पण-पाण्डुलिपि प्रस्तुत करने का श्रेय बेटी सौ० सरोजनीदेवी को है। जैन महिलाओं को साहित्य की प्रगति में आगे बढ़ने के लिए एक सुंदर प्रेरणा है।

समाज ज्ञानदान का महत्व आंके और हिन्दी की अपूर्व जैन रचनाओं को प्रकाश में लाने के लिए प्रस्तुत आदर्श का अनुकरण करे, यही कामना है।

विनीत्—
कामता प्रसाद जैन
आनरेरी संचालक

अलीगंज (एटा);
१५.८.१९५५



विषय-सूची

विषयसूची	पद सं०	पृ० सं०
जय शिव कामिन कन्त वीर भगवन्त अनन्त सुखाकर हैं	४७	३४
जय श्री ऋषभ जिनन्दा, नाश तो करो स्वामी मेरे दुख द्वन्दा	३२	२२
जय-जय जग भरम तिमिरि हरन जिनधुनी	५३	३८
जानत क्यों नहीं रे, हे नर आतमज्ञानी	६३	६१
जाऊं कहां तज शरन तिहारे	२६	२०
जिन छवि तेरी यह धन जगतारन	१७	१३
जिन छवि लखत यह बुधि भई	१६	१३
जिनवानी जान सुजान रे	५६	४०
जिन बैन सुनत मेरी भूल भगी	५४	३६
जिन राग द्वेष त्यागा, वह शतगुरू हमारा	६५	४६
जिनवर आनन भानु निहारत भ्रमतम घान नशाया है	२	३
जिया तुम चालो अपने देश	१०५	६८
जीव तू अनादि ही तें भूलो शिव गैलवा	६१	६०
त		
त्रिभुवन आनन्दकारी जिनछवि थारी नैन निहारी	६	८
तुम सुनियो श्री जिननाथ अरज इक मेरी जी	२२	१६
तू काहे करत रत तनमें यह अहितमूल जिम कारासदन	१०६	७१
तोहि समझायो सौ-सौ बार जिया तोहि	६२	६१
थ		
थारा तो वैणामें सरधान घणो छे	२८	१६
द		
दीठा भागन से जिनपाला, मोह नाशनेवाला	२३	१६
देखोजी आदीश्वर स्वामी कैसा ध्यान लगाया है	३१	२१
ध		
धन-धन साधर्मी जन मिलन की घरी	१३२	७६
धनि मुनि जिन आतम हित कीना	६२	४४

विषयसूची	पद सं०	पृ० सं०
श		
शिव पुरकी डगर समरस सौं भरी	८३	५६
शिवमग दरसावन रावरो दरश	२५	१८
स		
सकल ज्ञेय ज्ञायक तदपि निजानन्द रसलीन (स्तुति)	१	१
सब मिल हेली	५०	३५
सामरिया के नाम जपे से, छूट जाय भव भांमरिया	४४	३२
सुधि लीजो जी म्हारी मोहि भव दुख दुखिया जान के	२१	१५
सुनि जिन वैन श्रवन सुख पायो	५५	३९
सुनो जिया ये सतगुरु की बातें, हित कहत दयाल दयातें	८६	५८
ह		
हमतो कबहू न हित उपजाये	८७	५८
हमतो कबहू न निजघर आये	८९	५९
हमतो कबहू न निज गुन भाए	८८	५९
हमारी वीर हरो भव पीर	४९	३५
हे जिन तेरे मैं शरणे आया	१५	१२
हे जिन मेरी ऐसी बुधि कीजे	१३	११
हे जिन तेरो सुयश उजागर गावत है मुनि जन ज्ञानी	१०	९
हे नर भ्रम नींद क्यो न छांड़त दुखदाई सेवत चिरकाल	७३	५०
हे मन तेरी को कुटेव जो करन विषय में धावे है	९९	६४
हे हित वांछक प्रानी रे कर यह रीति सयानी	१०४	६७
हो तुम त्रिभुवन तारोहो जिनजी मो भव जलधि क्यों न तारतहो	१२	११
हो तुम शठ अविचारी जियरा जिन वृष पाय वृथा खोवतहो	९६	६३
ज्ञ		
ज्ञानी जीव निवार भरमतम वस्तुस्वरूप विचारत ऐसें	७५	५२
ज्ञानी ऐसी होली मचाई	११८	७६

* ॐ *

स्व० कविवर दौलतरामजी विरचित

दौलत-विलास

मङ्गलाचरणस्तुति

दोहा

सकलज्ञेयज्ञायक[1] तदपि[2], निजानन्द[3] रसलीन।
सो जिनेन्द्र जयवन्तनित[4], अरिरजरहसविहीन[5]॥

जय वीतराग विज्ञानपूर[6], जय मोह तिमिरको हरन सूर[7]।
जय ज्ञान अनन्तानन्त धार, दृग[8]सुख वीरज[9] मण्डित अपार॥
जय परम शान्ति मुद्रा समेत; भविजनकोनिज अनुभूति[10] हेत।
भवि भागनवश जोगे वसाय, तुम धुनिह्वै सुनि विभ्रम[11]नशाय॥
तुम गुण चिन्तत निज पर विवेक,प्रगटै विघटैं[12]आपदअनेक
तुम जगभूषण दूषणवियुक्त,[13]सबमहिमायुक्त विकल्प[14]मुक्त॥
अविरुद्ध[15] शुद्ध चेतन स्वरूप; परमात्म परम पावन अनूप।

---

१ सम्पूर्ण जाननेयोग्य जो कुछ भी है उसके ज्ञाता, जानने वाले २ फिरभी। ३ आत्मानन्द। ४ ऐसे जिनेन्द्र सदैव जयरूप हैं। ५ वैरीमोह [कर्म रिपु] रूपी मिट्टीके रहस्य [गूढ़तत्व] से दूर। ६ ज्ञान। ७ सूर्य। ८ दर्शन। ९ शक्ति। १० अनुभव। ११ संसय। १२ नष्ट हों। १३ दोष रहित। १४ एक बात मनमेंबैठा कर फिर उसके विरुद्ध सोच विचार। १५ अनुकूल।

शुभअशुभविभावअभावकीन; स्वाभाविकपरिणतिमय अछीन[1]॥
अष्टादशदोष विमुक्त धीर, स्वचतुष्टय[2] मय राजत गंभीर।
मुनि गणधरादि सेवतमहंत; नवकेवललब्धिरमा[3] धरंत॥
तुम शासन सेय[4] अमेय[5] जीव; शिवगये जांहिं जैहैं सदीव।
भवसागरमें दुख क्षार-वारिः[6] तारनको और न आप टारि॥
यहलखि निजदुख गदहरणकाज,[7] तुमहीं निमित्त-कारणइलाज।
जाने तातैं मैं शरण आय, उचरों निजदुःख जो चिरलहाय॥
मैंभ्रम्योअपनकोविसरिआप,[8] अपनाये विधिफल[9] पुण्य-पाप।
निजको परको करता पिछान; परमें अनिष्टता इष्ट ठान॥
आकुलित भयो अज्ञानधार ज्यों मृग मृगतृष्णा[10]जान-वारि।
तन परिणतमें आपो चितारि; कबहूं न अनुभव्यो स्वपदसार॥
तुमको विनजाने जोकलेश, पाये सो तुम जानत जिनेश।
पशु नारक नर सुरगति मझार, भवधरधर मर्यो अनन्तबार॥
अब काललब्धि[11]बलतैंदयाल; तुम दर्शन पाय भयोखुशाल।

---

१. जोकभी क्षय न हो। २अनन्तदर्शन,ज्ञान,सुख,वीर्य। ३. चार घातिया कर्मोंके क्षयहोनेपर नौ विशेषगुण केवलीअर्हतके प्रगट होतेहैं, अनन्तज्ञान,अनन्तदर्शन,क्षायिकसम्यत्व,क्षायिकचारित्र अनन्तदान, अनन्तलाभ, अनन्तभोग, अनन्तउपभोग, अनन्तवी-र्य। ४ सेवन करके। ५. अप्रमाण। ६. खारा पानी। ७ दुःखरूपपीड़ा हरनेके लिये। ८ अपनत्वको भूलकर स्वयं। ९ कर्मफल। १० जलकी लहरोंकी वह मिथ्याप्रतीति जो कभी कभी ऊसरमैदानोंमें तेजधूप पड़नेकेसमयहोतीहै। ११ समयविशेष।

मनशान्तभयोमिटिसकल द्वन्द,[१]चाख्योस्वातमरस दुखनिकंद ॥
तातैं अब ऐसी करहु नाथ, बिछुरे न कभी तुम चरणसाथ।
तुमगुणगण[२] कोनहिं छेव[३]देव जगतारनको तुम विरद[४]एव ॥
आतमके अहित विषय कषाय[५] इनमें मेरी परिणत[६] न जाय।
मैं रहों आपमें आपलीन[७], सो करो होंहु ज्यों निजाधीन ॥
मेरे न चाह कछु और ईश, रत्नत्रयनिधि दीजे मुनीश।
मुझकारज के कारण सुआप, शिवकरहु हरहु मम मोहताप ॥
शशि[८] शान्तिकरन तमहरनहेत, स्वयमेव तथा तुम कुशलदेत।
पीवत पियूष[९] ज्यों रोगजाय, त्यों तुम अनुभवतैं भवनशाय ॥
त्रिभुवनतिहुंकालमझारकोय, नहिंतुमबिन मुझ सुखदायहोय।
मोउर यह निश्चय भयोआज, दुखजलधि[१०]उतारन तुमजहाज ॥

दोहा

तुमगुणगणमणिगणपती[११] गणत[१२] न पावहिंपार।
दौल स्वल्पमति[१३] किमकहैं नमहुंत्रियोग[१४] सम्हार।

[२]

जिनवरआननभान[१५]निहारत,भ्रम-तमघान[१६]नशायाहै ॥ जिन०

---

१ उलझन,दुविधा। २ तुम्हारे गुणसमूह। ३ छेदन [उच्छेद-न]। ४ यश। ५ जो आत्माको कसे क्रोध, मान, माया,लोभ, ६ प्रवृत्ति। ७ आत्म में लीनहोना। ८ चन्द्रमा। ९ अमृत। १० दुःखसमुद्र। ११ तुम्हारे गुणरूपी मणियोंके समूहको गणधर १२ गिनते। १३ अल्प-बुद्धि। १४ मन, वचन,काय, की क्रिया। १५ मुखरूपी सूर्य। १६ संसयरूप अन्धकार का पुञ्ज।

वचन-किरन प्रसरनतें भविजन, मन-सरोज[1] सरसाया[2] है।
भवदुखकारण सुखविस्तारण, सुपथ कुपथ दरसाया है[3]। जिन०
विनसाई कंज[4] जलसरसाई,[5] निशिचर[6] समरदुराया[7] है।
तस्करप्रबलकषाय[8] पलाये, जिनधनबोध[9] चुरायाहै। जिन०
लखियत उडु[10] न कुभाव कहूँ अब, मोह उलूक लजायाहैं।
हंस-कोक[11] को शोक नस्यो, निजपरिणत-चकवी पायाहै। जिन०
कर्मवन्धकजकोप[12] बंधे चिर, भविअलिमुञ्चन[13] पाया है
'दौल'उजास[14] निजातम अनुभव,उर जग अन्तर छायाहै। जिन०

[२]

निरखत जिनचन्द्र वदन,[15] स्वपर सुरुचि आई॥ निरखत०
प्रगटी निज आनकी, पिछान ज्ञानभान की,
कलाउद्योत[16] होत, कामयामिनी[17] पलाई। निरखत०।
सास्वत[18] आनन्द-स्वाद, पायो विनसो विषाद,

---

१ हृदय कमल। २ विकसित किया। ३ इस पंक्तिमें संसारभ्रमण का कारण कुमार्ग,विस्तृतसुख का कारण सुमार्ग, दिखलाया है ४ काई [अज्ञानता] विनासी। ५ ज्ञानजल निर्मल हो गया। ६-राक्षसी। ७ ज्ञान अज्ञान का युद्ध दूर किया। ८ शक्तिवानक्रो-ध, मान, माया और लोभ रूपी चोर। ९ जिन्हों ने ज्ञानधन। १० तारे। ११ आत्मा रूपी चकवा। १२ कर्मवन्ध रूपी कमलों का समूह। १३ भव्य भ्रमर ने छुटकारा। १४ पदरचयिता "दौलत-राम" कहते हैं कि आत्मा के अनुभव का प्रकाश। १५ मुख। १६ प्रकाशकी किरण। १७ वासना इच्छा रूपीरात। १८ स्थायी।

आनमें[1] अनिष्टइष्ट,[2] कल्पना[3] नसाई। निरखत०
साधी निजसाधकी,[4] समाधि[5]—मोहव्याधि[6]की—
उपाधि[7] को विराधिकैं, आराधना[8] सुहाई। निरखत०
धन दिन छिन आज सुगुन, चिन्ते जिनराज अबै,
सुधरे सब काज 'दौल' अचल रिद्धि पाई। निरखत०

[४]

ध्यान कृपान[9] पानि[10] गहिनासी, त्रेशठप्रकृतिअरी[11]।
शेष पचासी लाग रहींहैं, ज्यों जेवरी—जरी[12]। ध्या०
दुठ अनङ्गमातङ्ग[13] भङ्ग कर, हैं प्रबलङ्गहरी[14]।
जापदभक्ति भक्तजन दुःख, दावानल[15] मेघझरी। ध्या०
नवल धवल पल[16] सोहैं कलमें,[17] क्षुधतृषव्याधि[18] टरी।
हलत न पलक अलक[19] नखबढ़त न,गतिनभ[20]माहिंकरी। ध्या०
जा विन शरण मरण जर,[21] धर धर, महा असात भरी।
'दौल' तास पद—दास होतहै, वास मुक्ति नगरी। ध्या०

---

१ अन्य में। २ रुचि के विपरीत [दुखद] रुचिके अनुकूल [सु-खद]। ३ विचारों की उड़ान। ४ आत्माकी साधनाकी। ५ — ध्यान मग्न होना। ६ ममत्वकी बाधा। ७ उत्पाद। ८ सम्यक दर्शन, ज्ञान: चारित्र, तप,। ९ तलवार। १० हाथ। ११ त्रेशठ घातियाकर्मों की प्रकृतियां। १२ जलीहुई रस्सी। १३ दुष्टकाम-रूपीहस्ती। १४ प्रवल अङ्ग के हरनेवाले। १५ अग्नी। १६ मास रुधिर। १७ शरीरमें। १८ भूख प्यास की बाधा। १९ केश। २० आकाश में गमन। २१ वृद्धावस्था।

[५]

भविन-सरोरुह सूर,[१] भूरि गुण पूरित अरहंता।
दूरितदोष मोषपथघोषक[२] करन कर्मअन्ता। भवि०
दृग बोधतें युगपतलख,[३] जाने जु भावऽनन्ता।
विगताकुल[४] जुतसुखअनन्त,विनअंतशक्तिवन्ता। भवि०
जा तनजोत उद्योत थकी, रवि-शशिदुति लाजंता।
तेजथोक अवलोक लगत हैं, फोक[५] शचीकंत।[६] भवि०
जास अनूपरूप को निरखत, हरखत हैं संता।
जाकी धुनिसुनि, निजगुनमुन[७] परगर[८] उगलंता। भवि०
'दौल' तौलबिन[९] जस तस, बरनत सुरगुर[१०] अकुलंता।
नामाक्षर[११] सुनकानस्वानसे रांक[१२] नाकगंता[१३]। भवि०

[६]

अरिरजरहस[१४] हनन प्रभु अरहन, जयवंतो जग में।
देव अदेव सेव कर जाकी, धरहिं मौलि[१५] पग में।

---

१ भव्यरूपी कमलों को सूर्य सदृश। २ दोषोंसे दूर मोक्षमार्ग की घोषणा करनेवाले। ३ अनन्त दर्शन और ज्ञानसे एकसाथ देखकर। ४ आकुलता रहित। ५ फीका। ६ इन्द्र। ७ अपने गुणोंका मनन करके। ८ मिथ्यात्वरूपी विष। ९ अतुल। १० बृहस्पति। ११ जिनेन्द्र नामका शब्द। १२ रंक भी। १३ स्वर्ग कोचलेगये। १४ मोहनीय,दर्शनावर्णी,ज्ञानावर्णी, गूढ़भेद को। १५ शिखर।

जा तन अष्टोतरसहस्र लक्षण,[1] लखि कलिऴसमे[2] ।
जा वच दीप-शिखा तेभवि; विचरें शिवमारगमें । अ०
जाम पासतें शोकहरन गुन, प्रगट भयौ नगमें[3] ।
व्याल-मराल[4] कुरंग-सिंघ[5] को,जाति विरोध गमें । अ०
जा जस-गगन[6] उलंघन कोई, क्षम[7] न मुनी खग[8] में ।
'दौल' नामतस सुरतरु[9] है या भव मरुथलमग[10]में । अ०

[७]

मैं हरख्यो, निरख्यो मुख तेरो ॥टेक॥
नाशान्यस्तनयन[11] भ्रूहिलयन[12] वयन[13]निवारनमोहअंधेरो । मैं०
परमें करमें निजबुधि अबलों, भव-सरमें दुःखसहे घनेरे ।
सो दुखभानन[14]स्वपरपिछानन[15] तुमबिनआन न कारन हेरो । मैं०
चाहभई शिवराह लाह[16] की, गयो उछाह असंजमकेरो ।
'दौलत'हितविराग चितआन्यो,जान्यो रूपज्ञानदृग[17] मेरा । मैं०

[८]

मैं आयौ जिन शरण तिहारी ॥टेक॥

---

१ एकहजार आठ लक्षण । २ दोष भागे । ३ अशोक वृक्ष में ४ -सर्प और हंस । ५ मृग और शेर । ६ आकाश । ७ समर्थ । ८ विद्याधर । ९ कल्प-वृक्ष । १० रेगिस्तान का रास्ता । ११ नाशिका पर टिकेहुये नेत्र [नासा-दृष्टि] । १२ भौंह नहीं हिलतीहैं, १३ वचन । १४ दुःख नष्ट करनेवाले । १५ निज-पर का भेदवि-ज्ञान करने वाले । १६ लाभ । १७ स्वरूपाचरण,ज्ञान,श्रद्धान-।

मैं चिरदुखी विभाव[1] भावतें, स्वाभाविकनिधि आप विसारी। मैं०
रूप निहार धार तुम गुन सुन, वैन होत भवि शिवमगचारी
यों मम कारज के कारन तुम, तुमरी सेव एव उरधारी। मैं०
मिल्यो अनंत जन्म में अवसर, अब विनऊं हे! भवसर-तारी।
परसें इष्ट-अनिष्ट कल्पना, 'दौल' कहै झट मेट हमारी। मैं०

[९]

त्रिभुवन आनंद-कारी, जिन छवि थारी, नैन-निहारी। त्रिभु०
ज्ञान अपूरव उदय भयो अव, जा दिन की वलिहारी।
मो उर मोद बढ़ो जो नाथ! सो कथा न जात-उचारी। त्रिभु०
सुन घनघोर[2] मोर मद ओर न,[3] ज्यों निधि[4] पाय भिखारी।
जाहि लखत झट झड़ित मोह-रज, होय सो भव अविकारी। त्रिभु०
जाकी सुन्दरता सों पुरंदर,[5] शोभा लजावन हारी।
निज-अनुभूति[6] सुधारस पुलकित, वदन मदन[7] रिपुहारी। त्रिभु०
शूल[8] दुकूल[9] न व्याल-माल[10] पुनि मुनि-मन मोद प्रसारी।
अरुणनयन भ्रमें न सैन नहिं, लंक[11] न वंक[12] सम्हारी। त्रिभु०
तातें विधि-विभाव[13] क्रोधादि न, लखियत हे! जगतारी।

---

१ परद्रव्य के निमित्त से जो द्रव्य के गुणोंमें विकार हो, जैसे जीव के राग-द्वेष। २ बादलों का शब्द। ३ हर्ष का पार नहीं। ४ लक्ष्मी। ५ इन्द्र। ६ अनुभव। ७ कामशत्रु को जीतने वाला। ८ त्रिशूल। ९ वस्त्र। १० सर्प की माला। ११-कमर। १२ टेढ़ापन। १३ कर्मादि परभाव।

पूजत पातिक-पुञ्ज पलावत, ध्याव शिव-विस्तारी ॥ त्रिभु०
कामधेनु, सुरतरु, चिन्तामणि, इक भव सुख-करतारी।
तुम छवि लखत मोदतें जो सुर, तस तुम-पद करतारी ॥ त्रिभु०
महिमा कहत न लहत पार सुर, गुरु[१] हू की बुधि-हारी।
वारी कहैं किम 'दौल' चहैं इम, देहु दशा तुम-धारी ॥ त्रिभु०

[१०]

हे जिन! तेरो सुयश-उजागर,[२] जानत है मुनि जन ज्ञानी ॥ हे०
दुर्जय मोह महा भट[३] जानें, निज वश कीने जग-प्रानी।
सो तुम ध्यान कृपान[४] पानिगहि, ततछिन ताकी थितिभानी[५] ॥ हे०
सुप्त अनादि अविद्या निद्रा, जिन जन निज सुधि बिसरानी।
ह्वै सचेत तिन निजनिधि पाई, श्रवन सुनी जब तुम वानी ॥ हे०
मङ्गलमय तू जग में उत्तम, तुही शरण शिव मग दानी।
तुम पद सेवा परम औषधी, जन्म जरामृत गद हानी ॥ हे०
तुमरे पञ्च कल्याणक माहीं, त्रिभुवन मोद दशा ठानी।
विष्णु विदम्बर जिष्णु दिगम्बर[६] मुनि, शिवकह ध्यावत-ध्यानी ॥ हे०
सर्व द्रव्य गुण पर्यय परिणति,[७] तुम सुबोध में नहिंछानी[८]।
तातैं 'दौलदास' उर आशा, प्रगट करो निजरससानी[९] ॥ हे०

---

१ बृहस्पति। २ यश प्रगट है। ३ बलवान-योद्धा। ४ खड्ग ५, स्थिति नष्ट की। ६ रक्षक, विद्वान, विजयी और दिशाएं ही-वस्त्र हैं जिनके-नग्न। ७ सर्व द्रव्य, गुण, पर्याय, और प्रवृत्ति। ८ नहीं छिपी है। ९ स्व आत्मानुभव में लिप्त।

[११]

मन, वच, तन, कर शुद्ध भजो, जिन दांव भला पाया।
अवसर फेर मिले नहिं ऐसा, यों सत् गुरु गाया ॥ मन०
बस्यो अनादिनिगोद[1] निकसि, फिर थावर[2] देह धरी।
काल असंख्य अकाज गमायो, नेक न समझ परी ॥ मन०
चिन्तामणि दुर्लभ लहिये, त्यों त्रस[3] पर्याय लही।
लट[4] पिपील[5] अलि[6] आदि जन्ममें, लह्यो न ज्ञान कहीं ॥ मन०
पञ्चेन्द्रिय-पशु भयो कष्ट तें, तहां न बोध लह्यो।
स्व-पर विवेक रहित विनसंयम, निशदिन भार वह्यो ॥ मन०
चौपथ[7] चलत रतन जिम लहिये, मनुप देह पाई।
सुकुल जैनवृष[8] सत्-संगत यह, अति दुर्लभ भाई ॥ मन०
यों दुर्लभ नरदेह कुधी[9] जे, विषयन संग खोवें।
ते नर मूढ़ अजान सुधारस,[10] पाय पांव धोवें ॥ मन०
दुर्लभ नरभव पाय सुधीः[11] जे, जैनधर्म सेवें।
'दौलत' ते अनन्त अविनाशी, सुख-शिवका वेवें[12] ॥ मन०

---

१ नित्यनिगोद अर्थात् जहाँ जीव अनादि काल से निगोद पर्याय में घिरे हुये हैं। अभीतक उनको अन्य पर्याय नहीं मिली है, [सातवे नर्क से नीचे नित्य निगोद का स्थान है]। २ अग्नि, जल, वायु, वृक्ष और पृथ्वीकायिक। ३ दो इन्द्रिय से लगाकर पाँचइन्द्रिय तक जीव त्रस कहलाते हैं। ४ कीड़ी। ५ चींटी। ६ भ्रमर। ७ चौराहा। ८ जैनधर्म। ९ बुद्धि-हीन। १० अमृत। ११ समझदार। १२ पावें।

[१२]

हो तुम त्रिभुवनतारीहो जिनजी, मो भव-जलधि क्यों न तारतहो ॥
अंजन कियो निरञ्जन[1] तातें, अधम-उधार विरद[2] धारत हो ।
हरि, बराह, मर्कट[3] झट तारे, मेरी बार क्यों ढील डारतहो ॥
यों बहु अधम-उधारे तुम तौ,मैं कहा अधम न मोहिं टारत हो ।
तुमको करनो परत न कछु,शिव-पथ लगाय भव्य-निवारत हो ॥
तुम छवि निरखत सहजटरे अघ,गुण चिन्तत,विधिरज[4] झारतहो ।
'दौल' न और यहै मोहि दीजे, जैसी आप भावना रत[5] हो ॥

[१३]

हे जिन ! मेरी ऐसी बुधि कीजे ॥
राग-द्वेष दावानल[6] तें बचि, समता रस में भीजे ॥
परमें त्याग[7] अपनपो; निजमें लाग[8] न कबहू छीजे ॥
कर्म[9] कर्मफलमाहिं न राचे,[10] ज्ञान सुधारस पीजे ॥
सम्यक दर्शन; ज्ञान; चरण;निधि ताकी प्राप्ति करीजे ॥
मुझ कारजके तुम कारन वर, अरज 'दौल' की लीजे ॥

---

१ दोष-रहित । २ यश, कीर्ति । ३ शेर, सुअर; बन्दर; ४ कर्म-मल । ५ लीन होना । ६ अग्नि । ७ राग द्वेषादि परभाव में त्याग । ८ अपने को आत्म-ध्यान में लगाना । ९ जो कर्म वर्गणा रूप पुद्गल के स्कध, जीव के राग द्वेषादिक परिणामों के निमित्त से जीव के साथ बंधकर ज्ञानावर्णादि कर्म रूप होजाते हैं । १० ज्ञानावर्णादि बंधे हुये कर्म–समय पाकर फल देते हैं; उसमें लिप्त न होवे ।

[१४]

निरख सुख पायो; जिन मुखचन्द ॥

मोह महा तम नाश भयो है; उर-अम्बुज[१] प्रफुलायो ।
ताप नस्यो तब बढ़्यो; उदधि आनन्द[२] ॥ नि०
चकवी कुमति बिछुरि अति बिलखे, आतमसुधा स्रवायो ।
शिथिल भये सब, विधि गणफन्द[३] ॥ नि०
विकट भवोदधि को तट निकट्यो, अघतरुमूल नशायो ।
'दौल' लह्यो अब, सुपद स्वच्छन्द[४] ॥ नि०

[१५]

हे जिन ! तेरे मैं शरणे आया ॥

तुम हो परम दयाल जगतगुरु, मैं भव भव दुख पाया ॥
मोह महादुठ घेर रह्यो मोहि; भव कानन[५] भटकाया ।
नित निज ज्ञान चरन निधि विसर्यो; तनधनकर अपनाया ॥
निजानन्द; अनुभव-पीयूष तज; विषय-हलाहल[६] खाया ।
मेरी भूल मूल दुखदाई; निमित[७] मोहविधि[८] थाया ॥
सो दुठ होत शिथिल तुमरे ढिंग; और न हेतु लखाया ।
शिव-स्वरूप शिव मग दर्शक तुम; सुयश मुनीगण गाया ॥
तुम हो सहज निमित जगहित के; मो उर निश्चय भाया ।
भिन्न होंहु विधितें[९] सो कीजे; 'दौल' तुम्हें शिरनाया ॥

---

१ हृदय-कमल । २ हर्ष का सागर । ३ कर्मफंद का समूह । ४ स्वाधीन । ५ वन । ६ विष । ७ कारण । ८ मोहकर्म । ९ कर्मोंसे

[१६]

जिन छवि लखत यह बुधि भई ॥
मैं न देह चिदङ्कमय[1] तन; जड़ फरस[2] रसमयी ॥
अशुभ शुभफल कर्म दुख सुखमें; पृथकता सब गई।
राग द्वेष विभाव चालित; ज्ञानता थिर थई ॥
परिगह न आकुलता दहन; विनसि प्रसमता[3] लई ॥
'दौल' पूरवअलभ[4] आनँद, लह्यो भव थिति जई ॥

[१७]

जिन छवि तेरी, यह धन, जग तारन ॥
मूल[5] न फूल;दुकूल[6] त्रिशूल न; सम-दमकारन[7] भ्रम-तमवारन ॥
जाकी प्रभुता की महिमा तें, सुरनधीसता[8] लागत सार न
अवलोकंत भविथोक मोखमग,चरत करत[9] निधिउर रजझारन[10]..
जजत भजतअघ तो को अचरज,समकित[11] पावन भावन कारन ।
तास सेवफल एव चहत नित, 'दौलत' ताके सुगुन उचारन ॥

[१८]

---

१ चेतना-सहित। २ स्पर्श। ३ क्रोधादि कषायों की मन्दता;- - यह सम्यकदृष्टी का एक बाह्य चिह्न है। ४ अपूर्व आनन्द। ५ जटा वा वक्कल ।६ फूलमाल और वस्त्र। ७ समता को सींचने और इन्द्रियों को दमन करने के कारण। ८ इन्द्र-पना। ९ चारित्र से होता है। १० आन्तरिक निधि पर की रज का नाशकरना। ११ सम्यकत्व, [सच्चे देव, शास्त्र, गुरू, की यथार्थ प्रतीति]।

मोहि तारोजी क्यों ना; तुम तारक; त्रिजग त्रिकाल में ॥
मैं भव-उदधि पड़्यो; दुखभोग्यो सो दुख जात कह्यो ना।
जामन मरन अनन्त तनो, तुम जानन[1] माहिं छिप्यो ना ॥
विषय विरस रस विषम भख्योमैं: चख्यो न ज्ञान सलोना।
मेरी भूल मोहि दुख देवे; कर्म निमित्त भलो ना ॥
तुम पदकञ्ज धरे हिरदै जिन; सो भव-ताप तप्यो ना।
सुर,गुरु[2] हू के वचन-किरनकर;तुम जसगगन नप्यो ना ॥
कुगुरु; कुदेव, कुश्रुत सेये मैं, तुम मत हृदय धर्यो ना।
परम विराग ज्ञानमय तुम; जाने विन काज सर्यो ना ॥
मो सम पतित[3] न और दयानिधि! पतित तार तुमसो ना।
'दौल' तणी अरदास यही है फिर भव वास वसों ना ॥

[१९]

घड़ीघड़ी पलपल छिनछिन निशदिन,प्रभुजीका सुमिरन करले रे ॥
प्रभु सुमिरें तें पाप कटत हैं, जन्म-मरण दुख हरले रे ॥
मन वच काय लगाय चरण चित, ज्ञान हिये विच धरले रे ॥
'दौलतराम' धरम नौका चढ़; भव सागर से तिरले रे ॥

[२०]

नाथ मोहि तारत क्यों ना! क्या तकसीर[4] हमारी ॥
अञ्जन चोर महा अघ करता; सप्तविसन का धारी।

---

१ ज्ञान में। २ बृहस्पति [नक्षत्र]। ३ पापी। ४ दोष।

वो ही मर सुरलोक गयो है; वाकी कछु न विचारी ॥
शूकर सिंह नकुल वानरसे; कौन कौन व्रतधारी।
तिनकी करनी कछु न विचारी; वे भी भये सुर भारी ॥
अष्टकर्म वैरी पूरब के; इन मो करी खुवारी[1]।
दर्शन ज्ञान रतन हर लीने; दीने महादुख भारी ॥
अवगुण माफ करे प्रभु सबके, सबकी सुधि न विसारी।
'दौलतदास' खड़ा करजोरें; तुम दाता मैं भिखारी ॥

[२१]

सुधि लीजो जी म्हारी; मोहि भवदुख दुखिया जान के ॥
तीनलोक स्वामी नामी तुम; त्रिभुवन के दुखहारी।
गणधरादि तुम शरण लई; लख लीनी शरण तिहारी ॥
जो विधिअरी[2] करी हमरी गति; सो तुम जानत सारी।
याद किये दुख होत हिये; ज्यों लागत कोट कटारी ॥
लब्धिअपर्याप्तनिगोद[3] में, एक उसास मझारी।
जनममरननवदुगुन[4] विथाकी; कथा न जात उचारी ॥
भू[5] जल ज्वलन[6] पवन प्रत्येकतरु; विकलत्रय[7] तनधारी।
पञ्चेन्द्रिय पशु नारक; नर सुर, विपति भरी भयकारी ॥
मोह महारिपुने नहिं सुखमय, होन दई सुधि थारी।

---

१ दुर्दशा। २ कर्म-शत्रु ३ जहाँ जीव आहारादि एकभी पर्याप्ति। को पूर्ण न कर सके। ४ अठारह बार जन्म-मरण के कष्ट की। ५ पृथ्वी। ६ अग्नि। ७ दो, तीन, और चार इन्द्रिय वाले जीव।

सो दुठ मन्द भयो भागन तैं, पाये तुम जगतारी ॥
यदपि-विराग[1] तदपि[2] तुम, शिव-मग सहजप्रगटकरतारी।
ज्यों रवि-किरन सहज मगदर्शक, यह निमित्त अनिवारी ॥
नाग छाग[3] गज बाघ भील दुठ, तारे अधम-उधारी।
सीस नवाय पुकारत अबके, 'दौल' अधम की बारी ॥

[२२]

तुम सुनियो श्री जिननाथ! अरज इक मेरीजी ॥ टेक
तुम विनहेत जगतउपकारी; वसुकर्मन मोहिकियो दुखारी।
ज्ञानादिक निधि हरी हमारी; द्यावो सो ममकेरी जी ॥
मैंनिजभूल तिनहिंसंगलाग्यो;तिनकृत करणविषय[4]रसपाग्यो।
तातें जन्मजरा दवदाग्यो[5] कर समता सम नेरी जी ॥
वे अनेक प्रभुमैं जोअकेला; चहुंगति विपातेमांहिं मोहिपेला।
भाग जगे तुमसे भयो भेला[6] तुमहो न्याय निवेरी जी ॥
तुम दयाल वेहाल हमारो, जगतपाल निज विरद समारो।
ढील न कीजे वेग निवारो; 'दौल'तणी भवफेरी जी ॥

[२३]

दीठा[7] भागनसे जिनपाला,[8] मोहनाशने वाला ॥

---

१ अगर तुम विरागी हो। २ फिरभी। ३ वकरा। ४ इंद्रियोंके वि-पय। ५ जलाया गया। ६ भेंट। ७ देखा। ८ सम्यकदृष्टीसे लगा कर वारहवें गुणस्थान तकके जीवोंकी जिनसंज्ञाहै, उनकारक्षक।

सुभग निशङ्क[1] रागबिन यातें, वसन न आयुधबाला[2] ॥ दीठा०
जास ज्ञानमें युगपत[3] भासत; सकल पदारथमाला[4] ॥ दीठा०
निजमें लीन हीन इच्छा पर; हितमित वचन रसाला ॥ दीठा०
लखि जाकी छवि आतमनिधि लहि, पावत होत निहाला ॥ दीठा०
'दौल' जास गुण चिन्तत रत ह्वै; निकट विकट भवनाला ॥ दीठा०

[२४]

प्रभु तो थारी; आज महिमा जानी, ॥ प्रभु०
अवलौं मोहमहामद[5] पिय मैं, तुमरी सुधि बिसराजी ।
भाग जगे तुम शान्तिछवीलखि, जड़तानींद बिलानी ॥ प्रभु०
जग विजयी दुखदाय रागरुष, तुम तिनकी थिति भानी ।
शान्ति-सुधासागर गुणआगर, परम विराग विज्ञानी ॥ प्रभु०
समवशरण अपार कमलाजुत[6] पै निरग्रन्थ[7] निदानी ।
क्रोधविना दुठ मोह विदारक, त्रिभुवनपूज्य अमानी ॥ प्रभु०
एक स्वरूप सकलज्ञेयाकृत,[8] जग उदास जग ज्ञानी ।
शत्रु मित्र सबमें तुम सम हो, जो सुखदुख फलथानी ॥ प्रभु०
परम ब्रह्मचारी ह्वै प्यारी, तुम हेरी शिवरानी ।
हो कृतकृत्य तदपि तुम शिव मग उपदेशक अगवानी ॥ प्रभु०
भई कृपा तुमरी तें तुममें, भक्ति सुमुक्ति निशानी ।

---

१ शङ्का-रहित । २ त्रिशूलादि शस्त्र सहित । ३ एक साथ । ४ संसार की सर्व द्रव्य । ५ मोह-रूपी गहरी मदिरा । ६ लक्ष्मी सहित । ७ परिग्रहरहित । ८ सकल जाननेयोग्य पदार्थोंकेज्ञाता ।

हो दयाल अब देहु 'दौल' को, जो तुमने कृतठानी ॥ प्रभु०

[२५]

शिव-मग दरसावन, रावरो[1] दरश ॥ शिव०

परपद चाह दाह गदनाशन;[2] तुम वचभेषज[3] पान सरस ॥ शिव०

गुणचितवत निजअनुभवप्रगटे;विघटेविधिठग[4]दुविध[5]तरस ॥ शि०

'दौल' अवाची सम्पति सांची, पाय रहे थिर राच सरस ॥ शिव०

[२६]

निरखि जिनचन्द री माई ॥ टेक

प्रभु दुति देख मंदभयो निशिपति,[6] आन सुपग लिपटाई।

प्रभु सुचंद वह मंद होतहै, जिन लख सूर[7] छिपाई।

सीत अद्भुत सो बताई ॥ निर०

अम्बर शुभ्र निरंतर दीसै, तत्व मित्र सरसाई।

फैल रही जग धर्म जुन्हाई,[8] चारन चार[9] लखाई।

गिरा[10] अमृत सो गनाई ॥ नि०

भये प्रफुल्लित भव्य कुमुद मन, मिथ्या तम सो नसाई।

---

१ तुम्हारो। २ कुदेवकी चाह-रूपी रोग कीपीड़ाको हरने वाले। ३ औषधि। ४ कर्म रूपी लुटेरे। ५ भावकर्म = रागद्वेषादि अ-शुद्ध जीव के परिणाम; द्रव्यकर्म = आत्मा के साथ भावकर्म के निमित्तसे बंधको प्राप्त हुआ ज्ञानावर्णादि पुद्गल कर्मका खण्ड। ६ चन्द्रमा। ७ सूरज। ८ चाँदनी। ९ प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग, द्रव्यानुयोग,। १० वाणी.।

दूर भये भव-ताप सबनि के, बुध अम्बुध[1] सो बढ़ाई।
मदन चकवे की जुदाई ॥ नि०
श्री जिनचन्द बन्द अब 'दौलत' चितकर चन्द लगाई।
कर्मबन्ध निर्बन्ध होत हैं, नागसुदमनि[2] लसाई।
होत निर्विष सरपाई ॥ नि०

[२७]

प्यारी लागे म्हाने जिन छवि थारी हो ॥
परम निराकुल पद दरसावत, वर विरागताकारी।
पट-भूषण[3] विन, पै सुन्दरता,सुर नर मुनि-मनहारी ॥ प्यारी०
जाहिविलोकत भवि निजनिधिलहि, चिरविभावता टारी।
निरनिमेष[4] तें देख सचीपति; सुरता[5] सफल विचारी ॥ प्यारी०
महिमाअकथ होत लख ताको, पशु-सम[6] समकित धारी।
'दौलत' रहो ताहि निरखनकी, भव-भव टेव हमारी ॥ प्यारी०

[२८]

थारा तो वैनामें सरधानघणो छै,म्हारे छविनिरखत हियसरसावे ॥
तुमधुनिघन[7] परचहनदहनहर[8] वर समतारस झर[9] बरसावे। म्हा०
रूप निहारत ही बुधि हो सो, निज-पर चिहन जुदे दरसावे।

---

१ बुद्धि का समुद्र। २ नागको दमन करने वाले। ३ वस्त्र-आभ-रण। ४ विना पलक झपकाये एकटक। ५ देवत्व। ६ पशु सदृश अज्ञान। ७ तुम्हारी बादलों सदृश वाणी। ८ परचाह की पीड़ा हरने वाली। ९ लगातार पानी बरसना।

मैंचिद्रङ्क[1] अकलङ्क अमलथिर,इन्द्रियसुखदुख जड़फरसावे[2]॥ म्हा०
ज्ञान विराग सुगुणतुम तिनकी, प्रापतिहित सुरपति तरसावे।
मुनिबड़भाग लीन तिनमेंनित; 'दौल' धवल[3] उपयोगरसावे ॥ म्हा०

[२९]

जाऊँ कहाँ तज शरन तिहारे ॥ टेक ॥
चूक अनादितनी या हमरी, माफकरो करुणां गुण धारे ॥ जाऊँ०
डूबत हों भवसागरमें अब; तुम बिन को मोहि पार किनारे। जाऊँ०
तुम सम देव अवर नहिं कोई, तातें हम यह हाथ पसारे ॥ जाऊँ०
मो सम अधम अनेक उबारे, बरनतहैं गुरु शास्त्र अपारे ॥ जाऊँ०
'दौलत' को भवपार करो अब; आयोहै शरणागत थारे ॥ जाऊँ०

[३०]

भज ऋपिपति[4] ऋषभेष[5] जाहि नित, नमत अमर[6] असुरा[7] ॥
मनमथ[8] मथ[9] दरसावन शिव-पथ, वृषरथ[10] चक्रधुरा[11] ॥ भज०
जा प्रभु गर्भ छः मास पूर्व,[12] सुर करी सुवर्ण-धरा[13]।
जन्मत सुरगिर[14] धर सुरगणयुत[15] हरि-पय[16] न्हवनकरा ॥ भज०
नटत-नृत्यकी विलय देख प्रभु, लहि विराग सु थिरा।

---

१ चेतना-स्वरूप। २ जड़ स्पर्शहै। ३ विशुद्ध-निर्मल। ४ मुनियों के ईश्वर। ५ ऋषभजिनेन्द्र। ६ देवता-इन्द्र। ७ भवनवासी देवों का वर्ग। ८ कामदेव। ९ मथने वाले। १० धर्म-रथ। ११ पहिये की धुरा। १२ पहिले। १३ स्वर्णमय पृथ्वी। १४ सुदर्शन मेरु। १५ देवों के समूह सहित। १६ इन्द्रनेक्षीर सागर के जल से।

तबहि देवऋषि[1] आय नाय शिर, जिन-पद पुष्पधरा[2] ॥ भज०
केवल समय जास बचरवि[3] ने, जगभ्रम-तिमिर[4] हरा ।
सुदृग बोध चारित्रपोत[5] लहि; भवि भव-सिन्धु तरा ॥ भज०
योगसंहार[6] निवार शेषविधि,[7] निवसे बसुम-धरा[8] ।
'दौलत' जे जाको जस गावें, ते ह्वै अज[9] अमरा ॥ भज०

[३१]

देखोजी आदीश्वर स्वामी कैसा ध्यान लगाया है ।
कर ऊपरि कर[10] सुभग विराजे, आसन थिर ठहरायाहै ॥ देखो०
जगत विभूति भूति[11] सम तजकर, निजानन्द-पद पाया है ।
सुरभित श्वासा, आशा-बासा,[12] नासादृष्टि[13] सुहाया है ॥ देखो०
कञ्चनवरन[14] चले मन रञ्च-न[15] सुरगिर ज्यों थिर थाया है ।
जास पास अहि[16] मोर मृगी-हरि[17] जातिविरोधनसायाहै ॥ देखो०
शुधउपयोग हुताशन[18] में जिन बसुविधि समिध[19] जलाया है ।

---

१ लौकान्तिक देव [पाँचवे स्वर्गकी आठ दिशाओं में आठ प्र-कारके रहनेवाले एक भवावतारी देव] । २ पुष्पाञ्जलि दी । ३ वचन रूपी सूर्य । ४ संसय रूपी अन्धकार । ५ सम्यक दर्शन ज्ञान और चारित्र की नौका । ६ योग [मन वचन काय] का निरोध । ७ बाकी बचे शेष कर्म । ८ आठवीं पृथ्वी-शिद्धशिला । ९ अजर [शुद्ध शब्द] । १० हाथ के ऊपर हाथ । ११ राख सदृश । १२ दिशायेंही वस्त्रहैं जिनके, अर्थात् नग्न परीषह को जीतनेवाले । १३ नाशिका पर दृष्टि । १४ स्वर्ण-वर्ण । १५ तिलमात्र भी नहीं । १६ सर्प । १७ हिरणी-शेर । १८ अग्नि । १९ होमकरने की लकड़ी ।

श्यामलि अलिकावलि[1] शिर सोहै, मानों धुआंउड़ाया है ॥ देखो०
जीवन-मरण अलाभ-लाभ जिन, तृण-मणिको समभाया है।
सुर नर नाग[2] नमहिं पद जाके, 'दौल' तास जस गायाहै ॥ देखो०

[३२]

जय श्री ऋषभ जिनेन्दा, नाश तो करो स्वामी मेरे दुखदन्दा[3] ॥
मातु मरुदेवी प्यारे, पिता नाभि के दुलारे, वंश तो इक्ष्वाक;
जैसे नभ[4] बीच चन्दा ॥ जयश्री०
कनक वरन तन, मोहत भविक जन, रवि शशि कोटि;
लाजें मकरन्दा[5] ॥ जयश्री०
दोष तौ अठारा नासे, गुन छिआलीस भासे, अष्ट-कर्म काट;
स्वामी भये निरफन्दा ॥ जयश्री०
चार ज्ञानधारी गनी,[6] पार नहिं पावें मुनी, 'दौलत' नमत,
सुख चाहत अमन्दा[7] ॥ जयश्री०

[३३]

निरखि सखी ऋषिन को ईश यह ऋषभजिन;
परखि कैं[8] स्व-पर परसौंज[9] छारी ॥ टेक
नैन नाशाग्र धरि, मैन[10] विनसाय कर;
मौनयुत स्वास दिशिसुरभिकारी[11] ॥ निरखि०

---

१ केशों की पंक्तियाँ। २ नागेन्द्र। ३ दुविधायें। ४ आकाश।
५ फूलों का रस। ६ गणधर। ७ स्थायी। ८ परीक्षा कर के।
९ पर-परिणती। १० काम। ११ दिशाओंको सुरभित करनेवाली।

धरासम[1] क्षांतियुत, नरामरखचरनुत[2]।
वियुत रागादि मद[3] दुरित हारी[4]।
जास क्रमपास[5] भ्रम नाश पञ्चास्य-मृग,[6]
वास करि प्रीति की रीति धारी ॥ निरख०
ध्यान दौं[7] माहिं विधि-दारु[8] प्रजराहिं;
शिर केश शुभ किधों[9] धूवां विथारी[10]।
फसे जगपङ्क[11] जन रङ्क तिने काढ़ने;
किधों[12] जगनाह[13] बांह प्रसारी ॥ निरख०
तप्त हाटक[14] वरण वसनविन आभरण[15];
खरे थिर ज्यों शिखिर मेरुकारी[16]।
'दौल' को देन शिवधौल[17] जगमौल[18] जे;
तिन्हें कर जोर वन्दना हमारी ॥ निरख०

[३४]

मेरी सुधि लीजे रिषभस्वाम, मोहि कीजे शिव-पथ गाम ॥ टेक
मैं अनादि भव-भ्रमत दुखी अब, तुम दुख मेटत कृपाधाम।
मोहि मोह घेरा कर चेरा, पेरा चहुँगति विपति ठाम ॥ मेरी०

---

१ पृथ्वी सदृश। २ मनुष्य, देव और विद्याधर द्वारा नमस्कृत। ३ रागादि मदसे रहित। ४ दुखहारी। ५ क्रमशः निकट आना। ६ शेर-हिरन। ७ ध्यान की अग्नि। ८ कर्म रूपी लकड़ी। ९ कैसे। १० विस्तारी। ११ संसार रूपी कीचड़। १२ के लिये। १३ जगत-नाथ। १४ सुवर्ण। १५ विना वस्त्र के शोभायुक्त। १६ पर्वत का। १७ मोक्ष-महल। १८ संसार-शिरोमणि।

विषयन मन ललचाय हरी मुझ, शुद्ध ज्ञान-सम्पत ललाम[1]।
अथवा या जड़ को न दोष मम, दुखसुखता परनतिसुकाम[2] ॥ मेरी०
भाग जगे तुम चरन जपे अब, बच सुनकें गहे सुगुण-ग्राम ॥
परम विराग ज्ञानमय मुनिजन, जपततुम्हारी सुगुण दाम[3] ॥ मेरी०
निर्विकार सम्पतिकृत तेरी, छवि पर वारों कोटि काम[4]।
भव्यन के भव-हारन कारन, सहज यथा तम-हरन घाम ॥ मेरी०
तुम गुण महिमा कथन करनकों, गिणत गणी निजबुद्धि खाम[5]।
'दौल' तणी[6] अज्ञान परिणतिकी, हे जगत्राताकर विराम[7] ॥ मेरी०

[३५]

जगदानन्दन जिन अभिनन्दन, पद-अरविन्द[8] नमूँ मैं तेरे ॥ टेक
अरुनवरन[9] अघताप हरन वर, वितरन-कुशल[10] सु शरन बड़ेरे।
पद्मासदन[11] मदनमद-भञ्जन, रञ्जन मुनिजनमन अलि केरे ॥ जग०
ये गुन सुन मैं शरनें आयो, मोहि मोह दुख देत घनेरे।
तामदभानन[12] स्वपरपिछानन[13] तुमविनआन न कारनहेरे ॥ जग०
तुम पद शरन गही जिन ही ते, जामन मरन जरा निरवेरे।
तुमतें विमुखभयेशठ तिनको, चहुँगतिविपति महाविधि[14] पेरे ॥ ज०

---

१ रमणीय। २ सुख दुख देनेवाली सकामप्रवृत्तिही है। ३ माला। ४ कामदेव। ५ जिसे अनुभव न हो। ६ की। ७ समाप्त। ८ कमल। ९ गुलाबी वर्ण। १० आनन्द बांटने वाले। ११ लक्ष्मी के घर। १२ उस गर्वको कतरनेके लिये। १३ अपना परका भेद-विज्ञान। १४ प्रबल कर्म।

तुमरे अमित सुगुन ज्ञानादिक, सतत मुदित गणराज-उगेरे[1] ।
लह तन मित[2] मैं पतित कहों किम, किन शिशुकन-गिरिराज[3] उखेरे ॥
तुम विन राग-द्वेष दर्पन ज्यों, निज निज भाव फलै तिनकेरे ।
तुमहो सहज जगत उपकारी; शिवपथ सारथवाह[4] भलेरे ॥ जग०
तुम दयाल बेहाल बहुत हम, काल कराल व्याल[5] चिर घेरे ।
भाल नये गुणमाल जपों तुम, हे दयाल! दुखटार सवेरे ॥ जग०
तुम बहु पतित सु पावन कीने, क्यों न हरो दुख-सङ्कट मेरे ।
भ्रम उपाधि[6] हर समसमाधि[7] कर, 'दौल' भये तुमरे अब चेरे ॥ जग०

[३६]

पद्मासद्म[8] पद्म-पद पद्मा,[9] मुक्ति सद्म[10] दरसावन है ।
कलिमलगञ्जन[11] मन-अलिरञ्जन, मुनिजन शरन सुपावनहै ॥ पद्मा
जाकी जन्मपुरी कुशाम्बिका, सुर नर नाग[12] रमावन है
जास जन्मदिन पूरव[13] पट नव, मास रतन वरसावन है ॥ पद्मा०
जा तप-थान पपोसा[14] गिरि सो, आत्मज्ञान थिर थावन है ।
केवल ज्योत उद्योत भई सो, मिथ्या तिमिर नशावन है ॥ पद्मा०

---

१ गणधर नें गाये । २ सीमा । ३ खरगोशों ने विशाल पर्वत ४ रास्ता चलने वाले व्यापारी । ५ सिंह या नाग । ६ जिसके संयोग से कोई वस्तु और की और दिखाई दे । ७ सम भावों में स्थिर रहना । ८ [ज्ञानरूपी] लक्ष्मीके घर । ९ पद्मप्रभु के पद में कमल का चिह्न । १० घर । ११ कर्ममलका नाश । १२ नागेन्द्र १३ पहिले । १४ पर्वत का नाम ।

जाको शासन[1] पञ्चानन[2] सो, कुमति मतङ्ग[3] नशावन है।
राग विना सेवक जन तारक, पै तस रुषतुष[4] भाव न है ॥ पद्म०
जाकी महिमा के वर्णन सों, सुर-गुरु[5] बुद्धि थकावन है।
'दौल' अल्पमतिको कहबो जिम, शिशुक गिरिन्द ढकावनहै[6]॥ पद्मा०

[३७]

चन्द्रानन[7] जिन चन्द्रनाथके, चरन चतुर चित ध्यावतु है ॥
कर्म चक्र चकचूर चिदातम[8], चिन्मूरत पद[9] पावतु है ॥ चन्द्रा०
हा हा हू हू नारद तुम्बर, जास अमल यश गावतु है।
पद्मा सची शिवा श्यामादिक, कर धर बीन बजावतु है ॥ चन्द्रा०
विन इच्छा उपदेश मांहिं हित, अहित जगत दरसावतु है।
जा पदतट सुरनरमुनि घट[10] चिरु, विकटविमोह नशावतुहै॥ चन्द्रा०
जाकी चन्द्रवरन तन दुति सों, कोटिक सूर छिपावतु है।
आतम ज्योति उद्योत मांहिं सब, ज्ञेय अनंत दिपावतु है ॥ चन्द्रा०
नित्य उदय अकलङ्क अछीन, सु मुनि उडु[11] चित्त रमावत है।
जाकी ज्ञानचान्द्रिका[12] लोकालोक[13] मांहिं समावतु है ॥ चन्द्रा०

---

१ तीर्थकाल। २ शेर। ३ हाथी। ४ राग-द्वेष। ५ बृह-स्पति। ६ खरगोशोंके द्वारा गिरिका ढकेलना। ७ चन्द्र समान मुख। ८ आत्मा। ९ शुद्धात्म पद। १० समूह। ११ तारा। १२ ज्ञान-चाँदनी। १३ लोकाकाश = जिसमें जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, और काल यह छः द्रव्यें पाई जावें, अलोका-काश = जहाँ उक्त द्रव्यें न पाई जावें।

साम्य-सिन्धुवर्द्धन-जगनंदन[1] को शिर हरि-गण नावतु हैं।
संसय विभ्रम मोह 'दौल' को, हर–जो जग भरमावतु है॥ चन्द्रा०

[३८]

जय जिन वासुपूज्य शिव–रमणी, रमन मदन दनु[2] दारन हैं।
बाल काल संजम संभाल, रिपु मोह व्याल बल मारन हैं॥ जय०
जाके पञ्च कल्यान भये, चम्पापुर में सुख कारन हैं।
वासववृन्द[3] अमन्द मोदधर, किये भवोदधि तारन हैं॥ जय०
जाके बैनसुधा[4] त्रिभुवन, जनको भ्रमरोग विदारन हैं।
जा गुनचिन्तन-अमल अनल[5] मृतजन्मजरा वन जारन हैं॥जय०
जाकी अरुन शांति छवि रवि भा, दिवस प्रबोध[6] प्रसारन है।
जाके चरन शरन सुरतरु वांछित, शिवफल विस्तारन हैं॥ जय०
जाको शासन सेवत मुनि जे, चार ज्ञान के धारन हैं।
इंद्र फणींद्र मुकुटमनि द्युतिजल, जापर कलिलि[7] पखारन हैं॥ जय०
जाकी सेव अछेवरमाकर,[8] चहुंगति विपति उधारन हैं।
जा अनुभव घनसार सु आकुल ताप कलाप निवारन है। जय०
द्वादशमों जिनचंद्र जास वर जस उजास को पार न है।
भक्तिभार तैं नमें, 'दौल' को चिर विभाव दुखटारन है॥ जय०

---

१ पृथ्वी सदृश। २ दानव-राक्षस ३ देवगण ४ वचनामृत ५ अग्नि ६ ज्ञान रूपी दिन ७ कीचड़ ८ जिसकी सेवा शाश्वत लक्ष्मी (मोक्ष) को कराने वाली है।

[३९]

कुंथन के[1] प्रतिपाल कुंथुजग, तार सार गुन धारक हैं।
वर्जित ग्रंथ[2] कुपंथवितार्जित, आर्जितपंथ[3] अमारक[4] हैं ॥ कुंथन०
जाकी समवशरन बहिरंग रमा,[5] गणधार अपारक[6] हैं।
सम्यग्दर्शन बोध चरण अध्यात्मरमा भर भारक[7] हैं ॥ कुंथन०
दशधा[8] धर्मपोतकर भव्यन को भवसागर तारक हैं।
वर-समाधिवन घन विभावरज पुंजनि कुञ्ज निवारक हैं ॥ कुंथन०
जासु ज्ञान नभमें अलोकजुत, लोकयथा इक तारक हैं।
जासु ध्यानहस्तावलम्ब दुःखकूपविरूप उधारक हैं ॥ कुन्थन०
तज छखंड कमला प्रभु अमला, तपकमला आगारक हैं।
द्वादश सभासरोज[9] सूर भ्रमतरु अकूर उपारक[10] हैं ॥ कुन्थन०
गुण अनंत कहि लहत अंत को ? सुरगुरु से बुध हारक हैं।
'दौल' नमें हे कृपाकंद ! भवद्वंद टार बहु बार कहैं ॥ कुन्थन०

[४०]

अहो ! नमि जिनप[11] नितनमत शतसुरप[12]

---

१ जीवों के २ परिग्रह की गांठ से रहित ३ पथ प्रदर्शक ४ अहिंसक ५ वाह्य लक्ष्मी ६ पार नहीं पाते ७ अध्यात्मरूपी लक्ष्मी के भार को वहन करने वाले हैं। ८ दशलाक्षणिक धर्म ९ बारह प्रकारकी सभा रूपी-कमल १० उखाड़ने वाले ११ जिनेन्द्र १२ सौ इन्द्र [भवनवासी चालिस, व्यन्तरदेव बत्तीस, कल्पवासी चौवीस मनुष्यों का राजा, तिर्यञ्चों का राजा शेर, चन्द्रमा, सूरज.]

कन्दर्प गज दर्प[1] नाशन प्रबल पन लपन[2] ॥ अहो० ॥
नाथ ! तुम बानि पय पान जे करत भवि,
नसैं तिनकी जरामरन जामन तपन ॥ अहो० ॥
अहो ! शिव भौन तुम-चरन चिन्तौन जे ।
करत तिन जरत, भावी दुखद[3] भव विपन ॥ अहो० ॥
हे ! धुवन पाल[4] तुम विशद गुन–माल उर ।
धरैं ते लहैं टुक काल में श्रेय–पन ॥ अहो० ॥
अहो ! गुन तूप तुम रूप चख[5] सहस करि ।
लखत संतोष-प्रापति भयो नाकप[6] न ॥ अहो० ॥
अज[7]! अकल[8]! तज सकल, दुखद परिगह कुगह[9];
दुःसह परिसह सही धार व्रत-सार-पन ॥ अहो० ॥
पाय केवल सकल लोक कर-वत लख्यो
अख्यो[10] वृष द्विधा, सुनि नसत भ्रम-तम-झपन[11]॥ अहो० ॥
नीच कीचक कियो, मीच[12] तैं रहित जिम
दास को पास ले नाश भव वास पन[13] ॥ अहो० ॥

---

१ काम रूपी गज का मद २ बलवान सिंह ३ आगामी आने वाला दुखप्रद ४ सत्य के प्रतिपादक ५ नेत्र ६ इन्द्र ७ नहीं है आगे को जन्म जिसका ८ निष्पाप ९ खोटेग्रह १० उपदेशा किया ११ ढकन १२ मृत्यु से १३ पञ्च परावर्तन रूप संसार ।

[४१]

नेमिप्रभू की श्याम वरन छवि, नैनन छाय रही ॥टेक॥
मणिमय तीन पीठ पर अंवुज, तापर अधर ठही ॥नेमि०॥
मार[1] मार तप धार जार विधि[2], केवल ऋद्धि लही।
चार तीस अतिशय[3] दुति मण्डित, नव दुग[4] दोष नहीं ॥नेमि०॥
जाहि सुरासुर नमत सतत[5] मस्तक तैं परस मही[6]।
सुर-गुरु उर अम्वुज प्रफुलावन, अद्भुत भान सही ॥नेमि०॥
धर अनुराग विलोकत जाको, दुरित नसै सब ही।
'दौलत' महिमा अतुल जासकी, कापै जात कही ॥नेमि०॥

[४२]

पारस जिन चरण निरख हर्ष यों लहायो।
चितवत चन्दा चकोर ज्यों प्रमोद पायो ॥टेक॥
ज्यों सुन घनघोर शोर, मोर हर्ष को न ओर।
रङ्क निधि समाज राज, पाय मुदित थायो ॥पारस०॥
ज्यों जन चिर क्षुधित होय, भोजन लखि सुखित होय।

१काम। २कर्मों को जला कर ३चौतीस अतिशय, जन्म के दश अतिशय, दश केवल ज्ञान के; चौदह अतिशय देवकृत, सब चौतीस प्रमान। ४अठारह दोष, जन्म, जरा, तृषा, क्षुधा; विस्मय अरति, खेद; रोग, शोक, मद, मोह, भय, निन्द्रा, चिन्ता, स्वेद; राग द्वेष और मरण। ५निरन्तर। ६पृथ्वी।

भेषज[1] गद[2] हरण पाय, सरुज[3] सु हरपायो ॥पारस०॥
वासर भयो धन्य आज, दुरित दूर परे भाज ।
शान्त दशा देख, महा मोह-तम पलायो ॥पारस०॥
जाके गुन जानन जिम भानन[4] भव कानन इम ।
जान 'दौल' शरन आय, शिव-सुख ललचायो ॥पारस०॥

[४३]

पास अनादि अविद्या मेरी, हरन पास परमेशा हैं ।
चिद्विलास[5], सुखराश प्रकाशक, वितरन त्रिभोन[6] दिनेशा हैं ॥टेक॥
दुर्निवार कन्दर्प[7] सर्पको, दर्प[8] विदर्ण- खगेशा[9] हैं ।
दुठ शठ कमठ, उपद्रव प्रलय समीर सुवर्ण नगेशा हैं ॥पा०
ज्ञान अनन्त दर्श, बल, सुख अनन्त पदमेशा हैं[10] ।
स्वानुभूति रमनीवर भवि भव, गिरि पवि[11] शिव सदमेशा हैं ॥पा०
ऋषि मुनि यति अनगार सदा तिस, सेवत पाद कुशेशा हैं ।
वदन चन्द्र तैं झरै गिरामृत,[12] नाशन जन्म कलेशा हैं ॥पा०
नाम मन्त्र जे जपे भव्य तिन, अघ अहि[13] नशत अशेषा हैं ॥
सुर अहमिन्द्र खगेन्द्र चन्द्र ह्वै, अनुक्रम होंहि जिनेशा हैं ॥पा०
लोक अलोक ज्ञेय ज्ञायक पैं, रत निज भाव चिदेशा हैं ।

१औषधि २पीड़ा ३रोगी । ४सूर्य । ५चैतन्यस्वरूपी । ६त्रिभुवन । ७कामदेव । ८गर्व ६गरुण पक्षी । १०लक्ष्मी के ईश्वर । ११वज्र । १२वचनामृत । १३पाप रूपी सर्प

राग विना सेवक जन तारक, मारक मोहन द्वेषा हैं ॥पा०
भद्र समुद्र विवर्द्धन[1] अद्भुत, पूरन चन्द्र सुवेशा है।
"दौल" नमें पद तासु जासु शिव थल समेद अचलेशा हैं ॥पा०

[४४]

सामरिया के नाम जपें तें छूट जाय भव भामरियां[2] ॥टेक॥
दुरित दुरत[3] पुनि तुरत पुरत गुन, आतम की निधि आगरियां[4]।
विघटत है परदाहचाह[5] झट, गटकत समरस गागरियां[6] ॥सा०
कटत कलङ्क कर्म कलसायन,[7] प्रगटत शिवपुर डागरियां।
फटत घटा घन मोह छोह हट,[8] प्रगटत भेद ज्ञान घरियां ॥सा०
कृपा कटाक्ष तुम्हारी ही तें, जुगल नाग विपदा टरियां॥
धार भये सो मुक्ति रमावर, "दौल" नमें तुम पागरियां[9]॥सा०

[४५]

वन्दों अद्भुत चन्द्रवीरजिन,[10] भविचकोर[11] चितहारी ॥टेक

---

१ सम्यक्त्व रूपी समुद्र के बढ़ाने वाले २ भव-बाधा ३ पाप छिप जाते हैं ४ वर ५ दूसरे को पीड़ित करने की इच्छा ६ समता रसका पान करते हैं। ७ कालिमा ८ मोह की घटा फट जाती है-क्षोभ हट जाता है। ९ पद या पर १० तीर्थङ्कर महावीर रूपी चद्रन्मा ११ सज्जन (अथवा भव्य) रूपी चकोर पक्षी।

सिद्धारथ नृपकुलनभ-मण्डन[1], खण्डन भ्रमतम भारी।
परमानन्द-जलधि विस्तारन, पाप ताप छयकारी ॥ वन्दों०॥
उदित निरन्तर त्रिभुवन अन्तर, कीरतकिरन पसारी॥
दोष मलङ्क कलङ्क अटङ्कित, मोह राहु निरवारी ॥ वन्दों०॥
कर्मावरन पयोद[2] अरोधित, बोधित शिवमग चारी ॥
गणधरादि मुनि उडुगन[3] सेवत, नित पूनमतिथिधारी ॥ वन्दों०॥
अखिल अलोकाकाश उलङ्घन, जासु ज्ञान उजियारी ॥
"दौलत" तनसाकुमुदिन-कोदन, जयो चरम जगतारी ॥ वन्दों०॥

[४६]

जय श्री वीरजिनेन्द्र चन्द्र, शतइन्द्र वंद्य जगतारं ॥ टेक ॥
सिद्धारथ कुल कमल अमल रवि, भवि भूधर पवि-भारं।
गुनमनिकोप अदोष मोखपति, विपिनकषाय-तुषारं ॥ जय० ॥
मदन कदन शिवसदन पद नमति, नित अनमित यतिसारं।
रमाअनन्त कन्त अन्तककृत, अन्तजन्तु हितकारं ॥ जय० ॥
फन्द चन्दनाकन्दन[4] दादुर, दुरित तुरत निर्वारं।

---

१ — राज्य कुलरूपी आकाश के सूर्य। २ बादल। ३ तारे।
४ चन्दना के फन्द काटने वाले

[चन्दना वैशाली सम्राट चेटककी रूपवती लघु कन्या थी। दुर्भाग्य से एक विद्याधर उसे हर लाया, पर वह चन्दना के शील पर विजय न पा सका। खीझकर उसने उसे निर्जन वन में छोड दिया। अब वह भील के चंगुल में आ फसी। परन्तु

रुद्ररचित अतिरुद्र उपद्रव, पवन अद्रिपति सारं ॥ जय० ॥
अन्तातीत अचिन्त्य सुगुन तुम, कहत लहतको पारं ।
हे ! जगमौल 'दौल' तेरे क्रम, नमें शीश कर धारं ॥ जय० ॥

[४७]

जय शिव कामिनकन्त ! वीर भगवन्त अनन्त सुखाकर हैं ॥
विधिगिरिगञ्जन बुधमन रञ्जन, भ्रमतमभञ्जन भाकर[1] हैं ।
जिन उपदेश्यो दुविध धर्म जो, सो सुररिद्ध रमाकर हैं ॥
भवि उरकुमुदिन–मोदन, भव-तमहरन अनूप निशाकर हैं ॥
परम विराग रहैं जगतैं पै, जगत–जीव रक्षाकर हैं ।
इन्द्र फणीन्द्र खगेन्द्र चन्द्र जग, ठाकर जाके चाकर हैं ॥
जासु अनन्त सुगुणमणिगण, नित गणते मुनिजन थाक रहैं ।
जा प्रभु पद नवकेवल लब्धि सु, कमलाको कमलाकर हैं ॥
जाके ध्यान–कृपान राग रुप, पास–हरन समताकर हैं ।
'दौल' नमें कर जोर हरन, भव–बाधा शिवराधाकर हैं ॥

भील भी चन्दना की दृढ़ता के समक्ष विफल रहा, तो उसने उसका कौशाम्बी के हाठ में मोल किया। एक दयार्द्र सेठ चन्दना को अपने यहाँ ले गए और उसे पुत्रिवत रखा। किन्तु सेठानी के दुर्व्यवहार ने उसे बन्दी बना दिया तथापि तीर्थंङ्कर महावीर वर्द्धमान ने बन्दी चन्दना के हाथ से ही आहर लेकर उसका उद्धार किया। यह घटना इतिहास - प्रसिद्ध है।] १. भास्कर - अर्थात् सूर्य।

[४८]

जय श्रीवीर जिनवीर जिनचन्द, कलुष-निकन्द मुनिहृद सुखकन्द॥
सिद्धारथनंद त्रिभुवनकोदिनेन्दचंद जावचकिरन-भ्रमतिमिरनिकन्द.
जाके पदअरविन्द सेवतसुरेन्द्रवृंद,जाकेगुणरटत कटत भव-फन्द।
जाकीशांतमुद्रानिरखतहरखतरिखि,जाकेअनुभवत लहतचिदानंद।
जाकेघातिकर्म विघटतप्रगटतभये, अनंत दरशबोधवीरजआनन्द ।
लोकालोकज्ञातापैस्वभावरतराता,प्रभुजगकोकुशलदाताञाताअद्वंद।
जाकीमहिमाअपार गणीनसकेउचार 'दौलत' नमतसुखचाहतअमंद॥

[४९]

हमारी वीर हरो भवपीर ॥ टेक ॥

मैं भवदुखित दयामृत-सर तुम, लखि आयो तुम तीर ।
तुमपरमेश मोखमग दर्शक, मोहदवानल नीर ॥ हमारी० ॥
तुम विनहेत जगत-उपकारी, शुद्ध चिदानन्द धीर।
गनपतिज्ञानसमुद्र न लंघे, तुमगुनसिन्धुगहीर ॥ हमारी० ॥
याद नहीं मैं विपति सही जो, धर धर अमित शरीर ।
तुमगुनचिन्ततनशतयथाभय,ज्योंघनचलतसमीर ॥हमारी०
कोटवार की अरज यही है, मैं दुख सहूँ अधीर ।
हरहुवेदनाफन्द 'दौल'की, कतर कर्म-जञ्जीर ॥ हमारी० ॥

[५०]

सबमिलदेखो हेली म्हारी हे, त्रिशला-बाल वदनरसाल । टेक ॥

आये जुत समवसरन कृपाल, विचरत अभय व्याल–मराल[1]।
फलित भई सकल, तरु–माल ॥ सब० ॥
नैन न हाल भृकुटी न चाल, बैन विदारै विभ्रम जाल।
छवि लखि होत सन्त निहाल ॥ सब० ॥
वन्दन काज साज समाज, संग लिये स्वजन–पुरजन भ्राज[2]।
श्रेणिक चलत है, नर पाल ॥ सब० ॥
यों कहि मोदयुत पुरवाल, लखन चालीं चरम–जिनपाल।
'दौलत' नमत कर धर भाल ॥ सब० ॥

[५१]

उरग सुरग नरईश[3] शीश जिप, आतपत्र त्रि धरे[4] ॥ टेक ॥
कुन्द-कुसुम सम चमर अमरगण, ढोरत मोद भरे ॥ उरग० ॥
कतरु अशो जाको अवलोकत, शोक थोक उजरे।
पारिजात संतानिकादि[5] के, वरपत सुमन वरे ॥ उरग० ॥
सुमणि विचित्र पीठ अम्बुज पर[6] राजत जिय सुथिरे ॥
वर्ण विगत[7] जाकी धुनि सुनिके, भवि भव-सिन्धु तरे ॥ उरग० ॥
साढ़े बारह कोड़ जाति के, बाजत तूर्य[8] खरे ॥

---

१ सर्प और सिंह। २ स्त्रियां। ३ नागेन्द्र, सुरेन्द्र, नरेन्द्र। ४ तीन छत्र रखे। ५ स्वार्गिक पुष्प वृक्षों के नाम। ६ मणियों से खचित अद्भुत सिंहासन पर स्थित कमल के ऊपर। ७ निरक्षरी अक्षर रहित। ८ बाजा।

भामण्डल[1] की दुति अखण्डने, रवि शशि मन्द करे ॥ उरग० ॥
ज्ञान अनन्त अनन्त दर्श बल, शर्म[2] अनन्त भरे ॥
करुणामृत पूरित पद जाके, 'दौलत' हृदय धरे ॥ उरग० ॥

[५२]

चिद्राय गुण मुनो[3] सुनो, प्रमस्त गुरु गिरा[4] ॥
समस्त तज विभाव[5] हो, स्वभाव में थिरा ॥
निज भाव के लखाव बिन, भवाब्धि में परा ।
जामन मरन जरा[6] त्रिदोष, अग्नि में जरा ॥
फिर सादि[7] औ अनादि दो, निगोद में परा ।
जहँ अङ्क के असंख्य भाग, ज्ञान ऊवरा[8] ॥
तहँ भव अन्तरमुहूर्त[9] के, कहे गणेश्वरा ।
छ्यासठ सहस त्रिशत छत्तीस, जन्मधर मरा ॥
यों वसि अनन्त काल फिर, तहाँ तें नीसरा[10] ।
भू जल अनिल[11] अनल[12] प्रतेकतरुमें तनधरा ॥

---

१ प्रभा मण्डल । २ सुख । ३ आत्मा के गुण मनन करो । ४ उत्तम-गुरुकी वाणी अर्थात् जिनवाणी । ५ परद्रव्यके निमित्त से स्वभावमें विकार होना । ६ वृद्धावस्था । ७ इतर-निगोद अर्थात् जिसमें जीव नित्यनिगोदसे निकलकर अन्यपर्याय धारण करके फिर निगोदमें जाते हैं, वे सादिनिगोद अथवा चतुर्गति-निगोद कहलाते हैं । ८ तहाँ अक्षरके असंख्यातवेभाग ज्ञान रहा ९ अड़तालीस मिनट । १० निकला ११ अग्नि । १२ हवा ।

अनुधरीर कुन्थु कान, मच्छ अवतरा[1] ।
जल थल खचर कुनर नरक, असुर उपज मरा ॥
अबके सुथल सुकुल सुसंग, बोध लहि खरा ।
'दौलत' त्रिरत्न[2] साध, लाध पद अनुत्तरा[3] ॥

[५३]

जय जय जग-भरम तिमिर, हरन जिनधुनी[4] ॥
या विन समझे अजों न, सौंज[5] निज सुनी ।
यह लखि हम निज पर, अविवेकता लुनी[6] ॥
जाको गनराज अङ्ग[7], पूर्व[8] मय चुनी ।
सो कही है कुन्दकुन्द[9], प्रमुख बहु मुनी ॥
जे चर[10] जड़[11] भये पीय, मोह बारुनी[12] ।
तत्व पाय चेते जिन, थिर सुचित सुनी ॥
कर्ममल पखारनेहि, विमल सुरधुनी[13] ।

---

१. संभवतः यहां पर कवि ने लोभकषाय में अंधे हुए उस छोटेसे-कुंथु मच्छका उल्लेख किया है, जो स्वयंभूरमण समुद्र में महाकाय मच्छ के कान पर बैठा हुआ उस विशाल मच्छके मुहं में आते जाते जन्तुओं को देखकर परिताप में जलता है। इस जीवने उस कुन्थु मच्छका भी जन्म धारण किया २. सम्यक श्रद्धा, ज्ञान, चारित्र। ३ शिव पद प्राप्तकर। ४ जिनवाणी। ५ परिणति। ६ भिन्न भिन्नकी। ७ जिनवाणी के विभाग। ८ अंग के भेद। ९ मूलसंघ के प्रधानाचार्य वि० सम्वत् ४९ में हुए थे। १० जीव। ११ मूर्ख। १२ शराब। १३ पवित्र गङ्गा।

तज विलम्ब अम्ब करो, 'दौल' उरपुजी[1] ॥

[५४]

जिन बैन सुनत मेरी, भूल भगी ॥ टेक ॥

कर्मस्वभाव भाव चेतनको, भिन्न पिछानन सुमति जगी ॥

निज अनुभूति सहज ज्ञायकता, सो चिर रुष-तुष मैलपगी[2] ॥

स्याद्वाद[3] धुनि निर्मल जलतें, विमलभई समभाव लगी ॥

संशय मोह भरमता विघटी, प्रगटी आतम सोंज[4] सगी ॥

'दौल' अपूरब मङ्गल पायो, शिवसुख लेन होंस[5] उमगी ॥

[५५]

सुनि जिनबैन श्रवन सुखपायो ॥ टेक ॥

नस्यो तत्त्व दुरअभिनिवेष[6] तम, स्याद्[7] उजास कहायो ॥

चिर विसर्‌यो लह्यो आतमचैन ॥ सुनि० ॥

दह्यो अनादि असंजम दव[8] तें, लहि व्रत-सुधा सिरायो[9] ॥

धीर धरी मन जीतन मैन[10] ॥ सुनि० ॥

भरो विभावअभाव-सकल अब, सकल रूप चित लायो ॥

'दौल' लह्यो अब अविचलजैन[11] ॥ सुनि० ॥

---

१ हृदय की अभिलाष पूर्ण हो २ सदैव से राग द्वेष मैल में लिपटी। ३ जिसमें अनेकान्त दृष्टि से कथन हो। ४ आत्म परिणती। ५ अभिलाषा। ६ खोटे विचारोंका प्रवेश। ७ स्याद्वाद सिद्धान्त। ८ अग्नि। ९ शीतलता प्राप्त की। १० कामदेव। ११ जैनतत्व में निश्चलता अर्थात् सम्यक श्रद्धान।

[५६]

जिनवानी जान, सुजान रे ॥ टेक ॥
लाग रही चिरतें विभावता, ताको कर अवसान[1] रे ॥ जिन० ॥
द्रव्य क्षेत्र अरु काल भाव की, कथनी को पहिचान रे ॥
जाहि पिछाने स्व-पर भेद सब, जाने परत निदान[2] रे ॥ जिन० ॥
पूरब जिन जानी तिनहीं नें, भानीं संसृति-बान[3] रे ॥
अब जानें अरु जानेंगे जे, ते पावें शिवथान रे ॥ जिन० ॥
कह 'तुष-माष[4]' मुनी शिवभूती, पायो केवलज्ञान रे ॥
यौंलखि'दौलत' सततकरोभवि, जिनवचनामृत पानरे ॥ जिन० ॥

[५७]

नित पीज्यो धीधारी[5]! जिनवानी, सुधा-सम जान के ॥
वीर मुखारविन्दतैं प्रगटी, जन्म-जरा गद टारी ॥
गौतमादि गुरु उरघट व्यापी, परम सुरुचि करतारी ॥ नित० ॥
सलिल-समान कलिलमलगञ्जन[6], बुधमनरञ्जन हारी ॥
भञ्जन विभ्रम धूल प्रभञ्जन[7], मिथ्या जलद निवारी ॥ नित० ॥
कल्याणकतरु उपवन धरिनी[8], तरनी[9] भव-जल तारी ॥

---

१ अन्त । २ निश्चय पूर्वक । ३ नष्ट कर दी संसार भ्रमण की टेव । ४ उड़द और उसके छिलकेकी भांति शरीर और आत्मा को भिन्न समझकर । ५हे बुद्धिमानों । ६ कर्म मलको नष्ट करने वाली । ७ प्रचण्ड वायु । ८ मङ्गल वृक्ष की उत्पादक पृथ्वी । ९ नाव ।

बन्ध विदारन पैनी छैनी[1], मुक्ति नसैनी सारी ॥ नित० ॥
स्व-पर स्वरूप प्रकाशनको यह, भानु कला अविकारी ॥
मुनिमनकुमुदिनमोदन शशिभा[2], समसुखसुमन सुवारी[3] ॥ नित० ॥
जाके सेवत वेवत[4] निजपद, नसत अविद्या सारी ॥
तीनलोक पति पूजत जाको, जान त्रिजग हितकारी ॥ नित० ॥
कोटिजीभ सों महिमा जाकी, कहि न सके पविधारी[5] ॥
'दौल' अल्पमति केम कहै, यह अधम उधारन हारी ॥ नित० ।

[५८]

और सबै जगद्वंद मिटाओ, लौ लावो जिन-आगम ओरी ॥
है असार जगद्वन्द बन्धकर, ये कछु गरज न सारत तोरी ।
कमलाचपला, यौवनसुरधनु, स्वजन पथिकजन क्यों रतिजोरी ॥
विषय कषाय दुखद दोनों ये, इनते तोर नेह की डोरी ।
परद्रव्यनको तू अपनावत, क्यों न तजे ऐसी बुधि भोरी ॥
बीत जाय सागरथिति सुरकी, नरपर्याय तनी अतिथोरी ।
अवसर पाय 'दौल' अब चूके, फिर न मिले निधि सागर ओरी ॥

[५९]

ऐसा मोही क्यों न अधोगति जावे, जाको जिनवाणी न सुहावे ॥

---

१ तीखीछैनी। २ मुनियोंके हृदयरूपी कमलिनिको प्रफुल्लित करने वाली, चन्द्रमाकी चांदनी। ३ समता रूपी सुख सुमनके लिये अच्छी वाटिका। ४ अनुभवते हैं। ५ वज्रधारी इन्द्र।

वीतराग से देव छोड़कर, भैरव यक्ष मनावे ॥
कल्पलता[1] दयालुता तज, हिंसा इन्द्रायन वावे[2] ॥ ऐसा० ॥
रुचै न गुरु निर्ग्रन्थ भेप वहु, परिग्रही गुरु भावे ॥
परधन परत्रियको अभिलापे, अशन[3] अशोधित खावे ॥ ऐसा० ॥
पर की विभव देख ह्वै सोगी, परदुख हर्प लहावे ॥
धर्म हेतु इक दाम न खर्चे, उपवन लक्ष वहावे ॥ ऐसा० ॥
ज्यों गृहमें संचै वहु अघ, त्यों वन हू में उपजावे ॥
अम्बर त्याग कहाय दिगम्बर, वाघम्बर तन छावे ॥ ऐसा० ॥
आरम्भ तज शठ जन्त्रमन्त्र कर, जनपै पूज्य मनावे ॥
धाम वाम[4] तज दासी राखे, वाहिर मढ़ी वनावे ॥ ऐसा० ॥
नाम धराय जती तपसी, मन विपयनमें ललचावे ॥
'दौलत' सो अनन्तभवभटके, औरनको भटकावे ॥ ऐसा० ॥

[६०]

ऐसा योगी क्यों न अभय-पद पावे, जो फेर न भवमें आवे ॥
संसय विभ्रम मोह विवर्जित, स्व पर स्वरूप लखावे ॥
लखि परमातम चेतनको पुनि, कर्म कलङ्क मिटावे ॥ ऐसा० ॥
भव तन भोग विरक्त होहि तन नग्न सुभेप वनावे ॥
मोह विकार निवार निजातम, अनुभवमें चित लावे ॥ ऐसा० ॥

---

१ कल्पवेल । २ हिंसा रूपी विप वेल को वढ़ावें । ३ भोजन ।
४ नारी ।

त्रस-थावर बध त्याग सदा, परमाद दशा छिटकावे ॥
रागादिक वश झूठ न बोले, त्रण हु न अदत गहावे ॥ ऐसा० ॥
बाहिर नारि त्याग अन्तर, चिद्ब्रह्म सुलीन रहावे ॥
परमाकिश्चन[1] धर्म-सारसो, द्विविधि[2] प्रसंग बहावे ॥ ऐसा० ॥
पञ्चसमिति[3] त्रयगुप्ति[4] पाल, व्यवहार-चरन[5] मग धावे ॥
निश्चय[6] सकल कषाय रहितहै, शुद्धातम थिर थावे ॥ ऐसा० ॥
कुंकुम[7] पङ्क दास रिपु तृण-मणि व्याल-माल समभावे ॥
आरतरौद्र[8] कुध्यानविडारे, धर्म[9] शुक्ल[10] को ध्यावे ॥ ऐसा० ॥
जाके सुखसमाजकी महिमा, कहत इन्द्र अकुलावे ॥
'दौल' तासपददासहोयसो, अविचलऋद्धि[11] लहावे ॥ ऐसा० ॥

[६१]

कबधोंमिलेंमोहि श्रीगुरुमुनिवर, करिहैंभवोदधि पाराहो ॥ टेक ॥

---

१ परिग्रह रहित। २ दो प्रकार परिग्रह-मिथ्यात्व, क्रोध मान, माया, लोभ, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, ग्लानि, स्त्रीवेद पुरुषवेद, नपुंसक वेद यह अन्तरंग का, और क्षेत्र, मकान, चांदी, सोना, धन, धान्य, दासी, दास, कपड़े, वर्तन, यह बाह्य-इस भांति चौवीस प्रकार है। ३ ईर्या, भाषा, एषणा, आदान निक्षेपण, प्रतिष्ठापना,। ४ मन, वचन, कायकी एकाग्रता का अभ्यास। ५ उक्त व्यवहार चारित्र। ६ निश्चय दृष्टि से। ७ केशर। ८ दुखमई तथा क्रूर भावों से होने वाले ध्यान। ९ धर्माचरण में लगना। १० निर्मल आतमध्यान, शुद्धोपयोग रूप एकाग्रता। ११ स्थिर मोक्ष लक्ष्मी।

भोग उदास जोग जिन लीनों, छांड़ि परिग्रह भारा हो ॥
इन्द्रिय दमन वमन मद कीनों, विषय कषाय निवारा हो ॥
कञ्चन-कांच बराबर जिनके, निन्दक-बन्दक सारा हो ॥
दुद्धर तप तपि सम्यक निजघर, मन बच तन करि धारा हो ॥
ग्रीषम-गिरि हिम-सरिता तीरें, पावस-तरु तर ठारा हो ॥
करुणांभीन चीन त्रस थावर, ईर्यापन्थ[1] समारा हो ॥
मार मार व्रतधार शील दृढ़, मोह महामल टारा हो ॥
मास छः मास उपास वास बन, प्रासुक करत अहारा हो ॥
आरत रौद्र लेश नहिं जिनके, धर्म शुक्ल चितधारा हो ॥
ध्यानारूढ़ गूढ़ निजआतम, शुधउपयोग[2] विचारा हो ॥
आपतिरहिं औरनिको तारहिं, भव-जलसिन्धु अपारा हो ॥
'दौलत' ऐसे जैन जतिनको, नितप्रति धोक हमारा हो ॥

[६२]

धनि मुनि जिन आतम, हित कीना ॥ टेक ॥
भव असार तन अशुचि, विषय विष जान महाव्रत लीना ॥
एक विहारी परिगह छारी, परिषह सहत अरी[3] ना ।
पूरब तन तप साधन मान न, लाज गही परवीना ॥
सून्य सदन गिरि गहन गुफामें, पद्मासन आसीना ।

---

१ पांच हाथ आगे पृथ्वी का निरीक्षण करके गमन करना । २ विशुद्ध ज्ञानकी साधना । ३ शत्रु

परभावन तें भिन्न आप पद, ध्यावत मोह विहीना ॥
स्वपर भेद जिनकी बुधि निज में, पागी–वाह्य लगी ना ।
'दौल' तास पद वारिज रज ने, किन अघ करे न छीना ॥

[६३]

धनि मुनि जिन यह भाव पिछाना ॥ टेक ॥
तनव्यय[१] वांछित प्रापति मानी, पुण्य उदय दुख जाना ॥
एक विहारि सकल ईश्वरता, त्याग महोत्सव माना ।
सब सुखको परिहार–सारसुख, जानि राग रुप भाना[२] ॥
चित् स्वभावको चिन्त्य प्राण निज, विमल ज्ञान दृग साना[३] ।
'दौल' कौन सुख जो न लह्यो तिनि, करो शान्तिरस पाना ॥

[६४]

धनि मुनि जिनकी लगी, लौं[४] शिव ओरने ॥
सम्यकदर्शन ज्ञान चरन निधि धरत हरत भ्रम चोरने ॥
यथाजातमुद्रा जुत सुन्दर, सदन विजन गिरि कोरने ।
तृण कञ्चन अरि स्वजन गिनत सम, निन्दन और निहोरने ॥
भवसुख चाह सकल तज, बलसजि करत द्विविधितप[५] घोरने ।

---

१ शरीर की क्षीणता । २ सब संसारिक सुखोंके त्याग को ही जिन्होंने वास्तविक सुख समझ कर राग-द्वेषको नष्ट कर दिया है । ३ आत्म स्वभाव का चिन्तवन करके अपनी आत्मा को निर्मल सम्यक दर्शन और ज्ञान से लिप्त किया है । ४ लगन । ५ दो प्रकार तप, प्रथम आभ्यन्तर तप–प्रायश्चित, विनय, वैया-

परम विराग भाव पवि तें नित, चूरत कर्म कठोरने ॥
छीन शरीर न हीन चिदानन, मोहत मोह झकोरने ।
जगतप हर भविकुमुद-निशाकर, मोदन 'दौल' चकोरने

[६५]

जिन राग द्वेष त्यागा, वह सत्‌गुरू हमारा ॥ जिन० ॥
तज राज ऋद्धि तृणवत्, निज काज संभारा ॥ जिन० ॥
रहता है वह वनखण्ड में, धरि ध्यान कुठारा ॥
जिन मोह महा तरु को, जड़मूल उखारा ॥ जिन० ॥
सर्वाङ्ग तजि परिग्रह; दिग अम्बर[1] धारा ॥
अनन्त ज्ञान गुनसमुद्र, चारित भँडारा ॥ जिन० ॥
शुक्लाग्नि को प्रजाल के; वसुकानन[2] जारा ॥
ऐसे गुरूको 'दौल' है, नमोऽस्तु हमारा ॥ जिन० ॥

[६६]

विषसम विषियनको टार टार, गुरु कहत सीख इम बार बार ॥
इन सेवत अनादि दुख पायो, जन्म मरण बहु धार धार ॥ गुरु० ॥
कर्माश्रित बाधाजुत फांसी, बन्ध बढ़ावन द्वन्दकार ॥ गुरु० ॥
ये न इन्द्रि के तृप्तिहेतु जिम तिस[3] न बुझावत क्षार वार ॥ गुरु० ॥

व्रत, स्वाध्याय, व्युत्सर्ग, ध्यान, और द्वितीय बाह्यतप-अनशन, अवमौदर्य अर्थात् भूखसे कम भोजन करना, वृत्तिपरिसंख्यान, रस परित्याग, विविक्त शय्याशन, काय क्लेश ।

१ दिशाओंको वस्त्र स्वरूप । २ अष्ट कर्म रूपी वन । ३ प्यास ।

इनमें सुखकल्पना अबुधके, बुधजन मानत दुख प्रचार ॥ गुरु० ॥
इन तजि ज्ञानपियूष चख्योनित 'दौल' लही भव-वारपार ॥ गुरु० ॥

[६७]

मेरे कब ह्वै वा दिन की सुघरी ॥ टेक ॥
तन विन वसन अशन विन बन में, निवसों नासादृष्टि धरी ॥
पुण्य-पाप परसों कब विरचों[1], परचों[2] निजनिधि चिर विसरी ।
तजि उपाधि सजि सहज़ समाधी, सहों घाम-हिम-मेघ झरी ॥
कब थिर जोग धरों ऐसो मोहि, उपल[3] जानि मृग खाज-हरी ।
ध्यान कमान तान अनुभव-शर[4] छेदों किह दिन मोह अरी ॥
कब तृण-कञ्चन एक गिनों मैं, मणिजड़ितालय शैल-दरी ।
'दौलत' सत्गुरु चरन सेव जो, पुरवे आश यही हमरी ॥

[६८]

चिन्मूरत दृगधारी[5] की मोहि, रीति लगति है अटापटी ॥
बाहिर नारकि-कृत दुख भोगे, अन्तर सुखरस गटागटी ।
रमति अनेक सुरनि[6] संग पै तिस, परिणतितें नित हटाहटी ॥
ज्ञान विराग शक्तितें विधिफल, भोगत पै विधि घटाघटी ।
सदन निवासी तदपि उदासी, तातें आश्रव[7] छटाछटी ॥
जे भवहेतु अबुधके ते तस, करत बन्ध की भटाझटी ।

---

१ विरक्त होऊँ । २ पहचानूँ । ३ पत्थर । ४ तीर । ५ आध्यात्मिक दृष्टि वाले अर्थात सम्यक्त्वी ६ देवाङ्गनायें । ७ कर्मों का आन ।

नारक पशु त्रिय षंड विकलत्रय, प्रकृतिनकी ह्वै कटाकटी[1] ॥
संयम धरि न सके पै संयम, धारन की उर चटाचटी[2] ।
तास सुयश गुन की 'दौलत' के लगी रहै नित रटारटी ॥

[६९]

आज मैं परम पदारथ पायो, प्रभु चरनन में चित लायो ॥
अशुभ गये शुभ प्रगट भये हैं, सहज कल्पतरु छायो ॥
ज्ञान शक्ति तप ऐसी जाकी, चेतन पद दरसायो ॥
अष्ट कर्म रिपु जोधा जीते, शिव-अंकूर जमायो ॥

[७०]

अपनी सुधि भूलि आप-आप[3] दुख उपायो ॥
ज्यों शुक नभ चाल विसरि, नलिनी लटकायो[4] ॥
चेतन अविरुद्ध शुद्ध, दरश बोधमय विशुद्ध ।
तजि-जड़ रस फरस[5] रूप, पुद्गल अपनायो ॥
इन्द्रिय सुखदुखमें नित, पाग राग-रुख[6] में चित ।
दायक भव विपति-वृन्द, बन्ध को बढ़ायो ॥

---

१ प्रथम नरकको छोड़ कर शेष छः नरकों में, तथा पञ्चेन्द्रिय पशु, स्त्री, नपुंसक और विकलत्रयमें सम्यक्त्वी जीव जन्म नहीं लेता, अर्थात् उसके ये प्रकृतियां नष्ट हो जाती हैं। २अभिलाष। ३ आत्मने स्वयं। ४ जिस प्रकार तोता उड़नेकी क्रिया भूल कर शिकारी द्वारा लटकाई हुई नली पर लटक जाता है। ५ स्पर्श ६ राग द्वेष।

चाह-दाह दाहै, त्यागो न ताहि चाहै।
समता-सुधा न गाहै, जिन निकट जो बतायो ॥
मानुष भव सुकुल पाय, जिनवर शासन लहाय।
'दौल' निजस्वभाव-भज, अनादि जो न ध्यायो ॥

[७१]

आप भ्रम विनाश आप-आप जान पायो;
कर्णधृत सुवर्ण जिम, चितारि चैन थायो ॥ टेक ॥
मेरो तन तनमय तन, मेरो मैं तन को;
त्रिकाल यूं कुबोध नशि, सुबोध भानु जायो ॥ आप० ॥
ये सु जैन वैन ऐन, चिन्तत पुनि पुनि सुनैन[1];
प्रगटो अब भेद निज, निवेदगुण[2] बढ़ायो ॥ आप० ॥
यों हीं चित् अचित् मिश्र, ज्ञेय ना अहेय हेय;
इंधन धनञ्जय[3] जिम स्वामियोग[4] गायो ॥ आप० ॥
भँवरपोतछुटत[5] झटित, वांछिततट निकटत जिम;
मोह राग रुख हर, जिय शिवतट निकटायो ॥ आप० ॥
विमल सौख्य मय सदीव—मैं हूँ मैं नहिं अजीव;
द्योत होत रज्जुमें भुजङ्ग भय भगायो[6] ॥ आप० ॥
यों हीं जिनचन्द सुगुन चिन्तत परमारथ-चुन;

१ निश्चय दृष्टि से। २ आत्म ज्ञान। ३ अग्नि। ४ उत्तम योग बताया। ५ लहरोंके समूहसे जाहज निकलते ही। ६ प्रकाश होते ही रस्सी में सर्प की कल्पना का डर दूर कर दिया।

'दौल' भाग जागे, अब अल्पपूर्व[1] आयो ॥ आप० ॥

[७२]

जबतें आनन्द-जननि[2] दृष्टि परी माई;
तबतें संसय[3] विमोह[4] भरमता[5] विलाई ॥ जब० ॥
मैं हूँ चितचिह्न[6] भिन्न-परतें, पर जड़ स्वरूप;
दोउन की एकता सु, जानी दुखदाई ॥ जब० ॥
रागादिक बन्ध हेतु, बन्धन बहु विपति देत;
संवर[7] हित जानि, तासु हेतु ज्ञानताई ॥ जब० ॥
सबसुखमय शिवहैं तसुकारन विधिझारन इम;
तत्व की विचारन जिनवानि सुधि कराई ॥ जब० ॥
विषय चाह ज्वालतें दह्यो अनन्त कालतें;
सुधाम्बुस्यात्पदाङ्क[8] गाहते प्रशांति आई ॥ जब० ॥
या बिन जग जालमें न शरन तीन कालमें;
सम्हाल चित भजो सदीव 'दौल' यह सुहाई ॥ जब० ॥

[७३]

हे नर भ्रमनींद क्योंन छांडत दुखदाई ॥ टेक ॥

---

१ संसार भ्रमण थोड़ा अवशेष रहा। २ अपार आनन्द उत्पन्न करने वाली आतम परिणति। ३ अत्मा नित्य है या अनित्य ऐसा संसय रूप ज्ञान। ४ कुछ होगा ऐसा ज्ञान का दोष। ५ उल्टा ज्ञान। ६ चेतना लक्षण वाला। ७ कर्माश्रव के रोकने का कारण। ८ अपेक्षा कृत कथन।

सेवत चिरकाल सोंज आपनी ठगाई ॥ हे० ॥

मूरख अघकर्म कहा भेदे नहिं मर्म लहा;
लागे दुख ज्वाल की न देह के तताई ॥ हे० ॥

जमके रव[1] बाजते सु भैरव[2] अति गाजते;
अनेक प्रान त्यागते सुने कहा न भाई ॥ हे० ॥

पर को अपनाय आप रूप को भुलाय हाय;
करनविषय दारु[3] जार चाह दौं बढ़ाई ॥ हे० ॥

अब सुनि जिनवानि राग द्वेष को जघान;
मोक्षरूप निजपिछान 'दौल' भज विरागताई ॥ हे० ॥

[७४]

आतम रूप अनूपम अद्भुत, याहि लखे भवसिन्धु तरो ॥
अल्पकाल में भरत चक्रधर, निज आतम को ध्याय खरो ।
केवलज्ञान पाय भवि बोधे, ततछिन पायो लोकशिरो ॥
या विन समझे द्रव्यलिङ्गमुनि[4] उग्र तपन करि भार भर्यो ।
नवग्रीवक[5] पर्यंत् जायकर, फेरि भवार्णव[6] माहिं पर्यो ॥
सम्यकदर्शन ज्ञान चरन तप, ये ही जगतमें सार नरो[7] ।
पूरव शिव को गये जांहिं अब, फिर जैहैं यह नियत[8] करो ॥

---

१ कालके शब्द । २ भयानक । ३ इन्द्रियोंको विषय रूपी लकड़ी ४ अन्तरंग में यथार्थ प्रतीति से रहित बाह्य साधु क्रियायोंके करने वाले मुनि । ५ सोलह स्वर्गोंके ऊपर स्थित विमान नव ग्रीवक कहलाते हैं । ६ भव समुद्र । ७ मनुष्य । ८ निश्चय ।

कोटि ग्रन्थ को सार यही है, ये ही जिनवानी उचरो।
'दौल' ध्याय अपने आतम को, मुक्ति रमा तव वेग वरो ॥

[७५]

ज्ञानी जीव निवार भरम-तम, वस्तुस्वरूप विचारत ऐसे ॥टेक॥
सुत तिय वन्धु धनादि प्रगट-पर ये मुझतें हैं भिन्न प्रदेसे[1]।
इनकी परिणतिहै इन आश्रित, जो इन भाव परनिवे वैसे ॥
देह अचेतन चेतन में इन, परिणति होय एकसी कैसे।
पूरन गलन स्वभाव धरै तन, मैं अज अचल अमल नभ जैसे ॥
पर परिणमन न इष्ट अनिष्ट न, वृथा राग-रुप द्वन्द भये से[2]।
नसै ज्ञान निज फंसे वन्ध में, मुक्त होय समभाव लये से ॥
विषयचाह दव-दाह नमै नहिं, विन निज सुधासिन्धु में पैसे।
अव जिनवैन सुने श्रवननतें, मिटै विभाव करूं विधि[3] तैसे ॥
ऐसो अवसर कठिन पाय अव, निज हितहेतु विलम्ब करे से।
पछितावो वहु होउ सयाने, चेतन 'दौल' छुटौ भव-भय से ॥

[७६]

मोही जीव भरमतमतें नहिं, वस्तु स्वरूप लखैं हैं जैसे ॥टेक॥
जे जे जड़ चेतनकी परिणति, ते अनिवार परनिवे वैसे।
वृथा दुखी शठ करि विकलप यूं नहिं परिनवे परनिवे ऐसे ॥
अशुचि सरोग समल जड़मूरति, लखत-विलात गगनघन जैसे।

१ आत्मासे अलगरहने वाला प्रदेशोंका समुदाय है। २ चेतन अचेतन के संघर्ष से राग द्वेष होते हैं। ३ उपाय।

सो तन ताहि निहारि अपनपो, चहत अबाध रहै थिर कैसे ॥
सुत तिय बन्धु वियोग योग यों, ज्यों सराय जन निकसें पैसें ।
बिलखत हरखत शठ अपनेलखि, रोवत-हँसत मत्तजन जैसे ॥
जिनरविवैन किरनलहि जिननिज, रूप सुभिन्नकियो परमें से ।
सोजगमौल 'दौल'को चिरथित, मोह-विलास[१] निकास हृदै से ॥

[७७]

आपा नहिं जाना तूने कैसा ज्ञानधारी रे ॥ टेक ॥
देहाश्रित करि क्रिया आपको, माने शिवमग चारी रे ॥
निजनिवेद बिन घोर परीषह, विफलकही जिन सारी रे ॥
शिव चाहेतो द्रिविधिकर्मतें, कर निज परिनति न्यारी रे ॥
'दौलत' जिननिजभावपिछान्यो, तिनभव-विपतिविदारीरे॥

[७८]

चेतन यहबुधि कौन सयानी, कहीसुगुरु हितसीख न मानी ॥
कठिनकाकताली[२] ज्यों पायो, नरभव सुकुल श्रवनजिनवानी ॥
भूमि न होत चांदनी की ज्यों, त्यों नहिं धनी ज्ञेयको ज्ञानी ॥
वस्तु रूप यों तू यों हीं शठ, हट करि पकरत सोंज विरानी ॥
ज्ञानीहोय-अज्ञान रागरुख, करि निज सहज स्वच्छता हानी ॥
इन्द्रिय जड़ तिन विषय अचेतन, तहां अनिष्ट इष्टता ठानी ॥
चाहे सुख दुखही अवगाहे, अबसुनि विधि जो है सुखदानी ॥

---

१ सदैवसे स्थिति मोह कर्मकी रंग रेलियां अर्थात् हर्ष विषादादि रूप खेल । २ संयोगवश ।

'दौल' आपकरि आप-आपमें[1] ध्याय लाय लय समरस-सानी ॥

[७९]

चेतनतैं यों ही भ्रम ठान्यों, ज्योंमृग मृग-तृष्णा जल जान्यो ॥
ज्योंनिशितममें निरखिजेवरी, भुंजग मान नरभय उरआन्यों ॥
ज्योंकुध्यानवश महिप माननिज, फंसिनर उरमांहीं अकुलान्यो ।
त्यों चिर मोह अविद्या पेरो, तेरो तें ही रूप भुलान्यो ॥
तोयतेलज्यों मेल न तनको, उपजखपज[2] में बहुदुख मान्यो ।
पुनि परभावन को करता ह्वै, तैं तिनको निजकर्म पिछान्यो ॥
नरभव सुथल सुकुल जिनवानी, काललब्धिबल योगमिलान्यो ।
'दौल' सहजभज उदासीनता, रोपतोप दुखकोप जु भान्यो ॥

[८०]

चेतन कौन अनीतिगहीरे, न मानत सुगुरुकहीरे ॥ टेक ॥
जिन विपयन वश बहुदुख पायो, तिनसो प्रीति ठही रे ॥
चिन्मय ह्वै देहादि जड़नि सों, तो मति पागि रही रे ।
सम्यग्दर्शन ज्ञान भाव निज, तिनको गहत नहीं रे ॥
जिनवृप पाय विहाय रागरुप, निज हित हेतु यही रे ।
'दौलत' जिनयह सीखधरी उर, तिनशिव सहज लही रे ॥

[८१]

चेतन अवधरि सहजसमाधि, जातें यह विनसे भव व्याधि ॥

---

१ आत्मा स्वयं अपनेको । २ जन्म मरण ।

मोह ठगो री खाय के रे, पर को आपा जान।
भूल निजातम ऋद्धिकों तें, पाये दुःख महान ॥
सादि अनादि निगोद दोयमें पर्यो कर्मवश जाय।
स्वास उसास मझार तहां भव-मरन अठारह थाय ॥
कालअनन्त तहां यों वीतो जब भई मन्द कषाय।
भू जल अनिल अनलपुनितरुह्वै कालअसंख्यगमाय॥
क्रमक्रम निकसि कठिन तें पाई शङ्खादिक पर्याय।
जलथलखचर होय अघठाने तसवश श्वभ्र [1]लहाय ॥
तित सागरलों बहुदुखपाये निकसिकबहू नरथाय।
गर्भ जन्म शिशु तरुण वृद्धदुख सहे कहे नहिंजांय ॥
कबहूँ किञ्चित पुण्यपाकसें चउविधि देव कहाय।
विषयआश मनत्रास लहीतहँ मरनसमय विललाय ॥
यों अपार भव खार वार में भ्रम्यो अनन्ते काल।
'दौलत'अबनिज भावनावचढ़ि लै भवाब्धिकोपार ॥

[८२]

चित् चिन्तके चिदेश कब, अशेष पर वमूं[2] ॥
दुखदा अपार विधि-दुचार की चमूं[3] दमूं ॥
कब पुण्य-पाप थाप आप आप में रमूं ॥

---

१ नरक २ चित्तमें चिदात्माका चिन्तवन करके मैं कब अवशेष पर वस्तु (कर्मादिक तथा मिथ्यात्वादि भाव) का वमन करूँ अर्थात् त्याग दूं। ३ सेना।

कब राग आग शर्म-बाग दागिनी शमूं[1] ॥
दृग ज्ञान भानु तें मिथ्या, अज्ञान तम दमूं ।
कब सर्वजीव प्राणिभूत तत्व सौं छमूं ॥
जल मल्ल लिप्त कल सुकल सुवल्ल परिनमूं ।
दलके त्रिशल्ल[2] मल्ल कब अटल्ल पद पमूं[3] ॥
कब ध्याय अज अमरको फिर न भवविपिन भमूं ।
जिन पूर कौल 'दौल' को इस हेतु हौं नमूं ॥

[८३]

शिवपुरकी डगर समरससों भरी ।।टेक॥
सो विषयविरस रचि चिर विसरी ॥शिव०॥
सम्यकदरश बोध व्रत नय भवदुख दावानल मेघ-झरी ॥
ताहि न पाय तपाय देहबहु, जनमजरा करि विपतिभरी ।
कालपाय जिनधुनिसुनिमैं जब, ताहिलहूँ सोई धन्यघरी ॥
तेजनधनि यामांहिं चरतनित, तिन कीरति-सुरपति-उचरी ।
विपयचाह भवराह त्याग अब, 'दौल' हरी रजरहस अरी ॥

[८४]

अरे जिया ! जग धोकेकी टाटी ॥ टेक ॥
झूठाउद्यम लोक करतहै, जिसमें निशिदिन घाटी ॥
जानबूझ कर अन्ध बने हैं, आंखिन बांधी पाटी ॥

---

१ समता रूपी बागको जलाने वाली राग रूपी आग को, शान्त करूँ । २ तीन शल्य माया, मिथ्या, निदान । ३ प्राप्त करूं ।

निकल जांयगे प्राण छिनक में, पड़ी रहेगी माटी ॥
'दौलतराम' समझ अपनेमन दिलकी खोल कपाटी ॥

[८५]

लखोजी या जिय भोरे[1] की बातें, नित करत अहित हित-घातें[2] ॥
जिन गणधर मुनि देशव्रती, समकिती सुखी नित जातें ।
सो पय ज्ञान न पान करत न, अघात विषय विष खाते ॥
दुखस्वरूप-दुखफलद जलदसम, टिकतन छिनक विलाते ।
तजत न जगत भजत पतित नित, रञ्च न फिरत तहां तें ॥
देह गेह धन नेह ठान अति, अघ सञ्चत दिन रातें ।
कुगति विपति फल की न भीत, निश्चींत प्रमाद दशा तें ॥
कभी न होय आपनों-पर द्रव्यादि पृथक चतुधा[3] तें ।
पै अपनाय लहत दुख शठ, नभ हतन चलावत लातें ॥
शिवगृहद्वार सार नरभव यह, लहि दश दुर्लभता तें ।
खोवत ज्यों मणि काग उड़ावत, रोवत रङ्कपना ते ॥
चिदानन्द निर्द्वन्द स्वपद तज, अपद विपदपद राते[4] ।
कहत सुसिख गुरु गहत नहीं उर, चहत न सुख समता ते ॥
जैन बैन सुनि भवि बहु भवहर, छूटे द्वन्द दशा ते ।
तिनकी सुकथा सुनत न मुनत न, आतम बोध कला ते ॥
जे जन समुझि ज्ञान दृग चारित, पावनपय वर्षाते ।

---

१ सरल । २ भलाई का घात करके । ३ स्व चतुष्टय से । ४ विपति स्थानमें लवलीन ।

नाप विमोह हर्यो तिनको जस, 'दौल' त्रिभौन विख्याते ॥

[८६]

सुनो जिया ये सत्गुरुकी बातें, हित कहत दयाल दयातें ॥ टेक॥

यह तन आन अचेतन है, तू चेतन मिलत न यातें।
नदपि पिछान एक आतम को, तजत न हठ शठता तैं ॥
चहुँगति फिरत भरत ममताको, विषय महाविष खाते।
नदपि न तजत न रजत अभागे, दृग व्रत बुद्धि सुधा तें ॥
मात तात सुत भ्रात स्वजन तुझ, साथी स्वारथ नाते।
तू इन काज साज गृह को सब, ज्ञानादिक मत घाते ॥
तन धन भोग संयोग सुपनसम, वार न लगत विलाते।
मत न कर भ्रम तज तू भ्राता, अनुभव ज्ञानकला तैं ॥
दुर्लभ नरभव सुथल सुकुलहै, जिन उपदेश लहा तैं।
'दौल' तजो मनसों ममता ज्यों, निबड़ो द्वन्द दशा तैं ॥

[८७]

हमतो कबहू न हित उपजाये ॥ टेक ॥

सुकुल सुदेव सुगुरु सुसंग, हितकारन पाय गमाये ॥ हम० ॥
ज्यों शिशुनाचत आप न माचत, लखन हार बौराये ॥
त्यों श्रुतवांचत आप न राचत, औरनको समझाये ॥ हम० ॥
सुजस लाह[1] की चाह न तज, निजप्रभुता लखि हरपाये ॥

---

१ लाभ।

विषय तजे न रचे निजपदमें, परपद-अपद लुभाये ॥ हम० ॥
पाप त्याग जिन जाप न कीनीं, सुमन चाप तपताये ॥
चेतन तन को कहत भिन्न, पर देह सनेही थाये ॥ हम० ॥
यह चिरभूल भई हमरी, अब कहा होत पछिताये ॥
'दौल' अजों भवभोग रचो मत, ये गुरुवचन सुनाये ॥ हम० ॥

[८८]

हमतो कबहूँ न निजगुन भाये ॥ टेक ॥
तननिज मान जान तनदुख—सुखमें विलखे हरषाये ॥ हम० ॥
तनको गरन मरन लखि तनको, धरन मान हम जाये ॥
याभ्रमभौंरपरे भवजलचिर, चहुँगति विपति लहाये ॥ हम० ॥
दरश बोध व्रतसुधा न चाख्यो, विविध विषयविष खाये ॥
सुगुरुदयालसीखदई पुनिपुनि, सुनिसुनि उरनहिंलाये ॥ हम० ॥
वहिरातमता[1] तजी न—अन्तरदृष्टि न ह्वै निज ध्याये ॥
धाम काम धन रामाकी नित, आस-हुताश जलाये ॥ हम० ॥
अचल अरूप शुद्ध चिद्रूपी, सबसुख मय मुनि गाये ॥
'दौल'चिदानँद स्वगुणमगन जे, ते जियसुखिया थाये ॥ हम० ॥

[८९]

हमतो कबहूँ न निज घर आये ॥ टेक ॥
पर घर फिरत बहुतदिन बीते, नाम अनेक धराये ॥ हम० ॥

---

१ बाहरी पदार्थों में लगाव ।

परपद-निजपद मान मगन ह्वे, परपरिणति लिपटाये ॥
शुद्ध बुद्ध सुखकन्द मनोहर, चेतन भाव न भाये ॥ हम० ॥
नर पशु देव नरक निज जान्यों, परजय बुद्धि लहाये ॥
अमल अखण्ड अतुल अविनाशी, आतमगुननहिं गाये ॥ हम० ॥
यह बहुभूल भई हमरी, फिर कहाकाज पछिताये ॥
'दौल' तजो अजहूं विषयनको, सतगुरुवचन सुहाये ॥ हम० ॥

[९०]

राचि रह्यो परमांहिं तू अपनोरूप न जाने रे ॥ टेक ॥
अविचलचिन्मूरत विनमूरत, सुखी होत तस ठाने रे ॥
तन धन तात भ्रात सुत जननी, तू इनको निज जाने रे ।
ये पर इनहिं वियोग योगमें, यों हीं सुखदुख माने रे ॥
चाह न पाये पाये तृष्णा, सेवत ज्ञान जघाने रे ।
विपतिखेत विधि बन्धहेतु पै, जान विषयरस खाने रे ॥
नरभव जिनश्रुत-श्रवणपाय अब, करनिजसुहित सयानेरे ।
'दौलत' आतमज्ञान सुधा-रस, पीवो सुगुरु बखाने रे ॥

[९१]

जीव तू अनादिहीतें भूल्यो शिव-गैलवा ॥ टेक ॥
मोहमद वार पियो स्वपद विसार दियो;
पर अपनाय लियो इंद्री-सुख में रचियो;
भवतें न भियो न तजियो मनमैलवा ॥ जीव० ॥
मिथ्या ज्ञान आचरण धरि कर कुमरण,

तीनलोककी धरनि तामें कियो है फिरन;
पायो न शरन न लहायो सुख–शैलवा ॥ जीव० ॥
अब नरभव पायो सुथल सुकुल आयो;
जिन उपदेशभायो 'दौल' झट छिटकायो;
पर-परणति दुखदायिनी चुरैलवा ॥ जीव० ॥

[९२]

तोहि समझायो सौ सौ बार, जिया तोहि समझायो०
देख सुगुरुकी परहितमें रति, हितउपदेश सुनायो ॥ सौ० ॥
विपयभुजङ्ग सेय दुखपायो, पुनि तिनसों लिपटायो;
स्वपद विसार रच्यो परपदमें, मद-रत ज्यों बौरायो ॥ सौ० ॥
तन धन स्वजन नहीं हैं तेरे, नाहक नेह लगायो;
क्यों न तजे भ्रम चाख समामृत, जो नित संत सुहायो ॥ सौ० ॥
अबहूँ समझ कठिन यह नरभव, जिनवृप विना गमायो;
ते विलखे मणि डाल उदधिमें, 'दौलत' सो पछितायो ॥ सौ० ॥

[९३]

जानत क्यों नहिं रे हे नर! आतम ज्ञानी ॥ टेक ॥
रागद्वेप पुद्गल की सम्पति, निहचै शुद्ध निशानी ॥
जाय नरक सुर नर पशुगति में, यह परजाय विरानी।
सिद्धसरूप सदा अविनाशी, मानत विरले प्रानी ॥
कियो न काहू हरै न कोई, गुरु सिख कौन-कहानी।
जनम मरन मल रहित विमल है कीच विना ज्यों पानी ॥

सार पदारथ है तिहुँजग में नहिं क्रोधी नहिं मानी,
'दौलत' सो घटमांहिं विराजे लखि हूजे शिवथानी ॥

[९४]

मानत क्यों नहिं रे हे नर! सीख सयानी ॥ टेक ॥
भयो अचेत मोहमद पी के अपनी सुधि विसरानी ॥
दुखी अनादि कुबोध अव्रत तें फिर तिनसों रति ठानी।
ज्ञानसुधा निजभाव न चाख्यों पर परनति मतिसानी ॥
भव असारता लखे न क्यों जहँ नृप ह्वे कृमि विटथानी[1]।
सधन-निधन नृप-दास स्वजन-रिपु दुखिया हरि से प्रानी ॥
देह येह गदगेह, नेह इस है, बहु विपति निसानी।
जड़ मलीन छिनछीन करमकृतबन्धन शिवसुख हानी ॥
चाहज्वलन ईंधनविधि वनघन आकुलता कुल खानी।
ज्ञानसुधा-सर शोषन रवि ये विषय अमितमृतु दानी ॥
योंलखि भव तन भोग विरचि करि निजहितसुन जिनवानी
तज रुप-राग 'दौल' अब अवसर यह जिनचन्द्र बखानी ॥

[९५]

निपट अयाना तें आपा न जाना नाहक भरम भुलाना वे ॥
पीय अनादि मोहमद मोह्या, परपद में निज माना वे ॥
चेतन चिह्न भिन्न जड़ता सों, ज्ञान दरश रस-साना वे।

---

१ राजा भी मर कर विष्टा का कीड़ा हुआ।

तनमें छिप्यो लिप्यो न तदपि, ज्यों जल में कजदल[1] माना वे ॥
सकल भाव निज निज परिणति में, कोई न होय विराना वे।
तू दुखिया परकृत्य मान ज्यों, नभ ताडन श्रम ठाना वे ॥
अजगण में हरि[2] भूल अपनपो, भयो दीन हैराना वे।
'दौल' सुगुरु धुनि सुनि निजमें-निज पाय लह्यो सुखथाना वे ॥

[९६]

हो तुम शठ अविचारी जियरा! जिनवृष पाय वृथा खोवत हो ॥
पी अनादि मदमोह स्वगुन निधि, भूल अचेत नींद सोवत हो ॥
स्वहित सीखवच सुगुरु पुकारत, क्यों न खोल उर-दृग जोवत हो।
ज्ञान विसारि विषयविष चाखत, सुरतरु जारि कनक बोवत हो ॥
स्वारथ सगे सकल जन कारन, क्यों निज पाप-भार ढोवत हो।
नरभव सुकुल जैनवृष नौका, लहि निज क्यों भवजल डोवत हो ॥
पुण्य पापफल वात-व्याधि वश, छिनमें हँसत छिनक रोवत हो।
संयमसलिल लेय निज उरके, कल मल क्योंन 'दौल' धोवत हो ॥

[९७]

मान ले सिख मोरी, झुकै मत भोगन ओरी ॥ टेक ॥
भोग भुजङ्ग-भोग[3] सम जानो, जिन इनसें रति जोरी।
ते अनन्त भव भीम भरे दुख, परे अधोगति पोरी ॥
वंधे दृढ़ पातक डोरी ॥ मान० ॥

---

१ कमलों के पत्र। २ बकरोंमें शेर। ३ सर्प के फण।

इनको त्याग विरागी जे जन, भये ज्ञान वृष धोरी।
तिन सुख लियो अचल अविनाशी, भवफांसी दई तोरी॥
रमें तिन संग शिव गोरी॥ मान०॥
भोगन की अभिलाष हरन को, त्रिजग सम्पदा थोरी।
यातें ज्ञानानन्द 'दौल' अब, पियौ पियूष–कटोरी॥
मिटै भव व्याधि कठोरी॥ मान०॥

[९८]

छांड़ि दे बुधि भोरी, वृथा तनसे रति जोरी॥ टेक॥
यह पर है न रहै थिर पोषत, सकल कुमल की झोरी।
या सों ममता करि अनादि से, बंधो करम की डोरी॥
सहै दुख-जलधि हिलोरी॥ छांड़ि०॥
ये जड़ है तू चेतन यों हीं, अपनावत बरजोरी।
सम्यकदर्शन ज्ञान चरन निधि, ये हैं सम्पति तोरी॥
सदा विलसो शिवगोरी॥ छांडि०॥
सुखिया भये सदीव जीव जिन, या सों ममता तोरी।
'दौल' सीख यह लीजे–पीजे, ज्ञान पियूप कटोरी॥
मिटै पर चाह कठोरी॥ छांडि०॥

[९९]

हे मन! तेरी को कुटेव यह, करन–विपयमें धावे है॥ टेक॥
इनहीं के वश तू अनादि तें, निज स्वरूप न लखावे है॥
पराधीन छिनछीन समाकुल, दुर्गतिविपति चखावे है॥ हे०॥

फरस विषयके कारन वारन[1] गरत परत दुख पावे है ॥
रसना इन्द्रीवश झष[2] जलमें, कण्टक कण्ठ छिदावे है ॥ हे० ॥
गंधलौल[3] पङ्कज मुद्रित में, अलि निज प्राण खपावे है ॥
नयन विषयवश दीपशिखा में, अंग पतङ्ग जरावे है ॥ हे० ॥
करनविषयवश हिरन अरनमें, खलकर प्राण लुनावे है ॥
'दौलत' तज इनको जिनको भज, यहगुरुसीख सुनावे है ॥हे०॥

[१००]

छांडत क्यों नहिं रे, हे नर ! रीति अयानी ॥ टेक ॥
बार बार सिख देत सुगुरु यह, तू दे आनाकानी ॥ छांडत० ॥
विषय न तजत न भजत बोधव्रत, दुखसुख जाति न जानी ॥
शर्म चहै न लहै शठ ज्यों, घृतहेतु विलोवत पानी ॥ छांडत० ॥
तन धन सदन स्वजन जन तुझ सों, ये परजाय विरानी ॥
इन परिणमन विनश उपजन सों, तैं दुख सुखकर मानी ॥ छांडत॥
इस अज्ञानतें चिरदुख पाये, तिनकी अकथ कहानी ॥
'ताको तज दृग ज्ञान चरन भज, निजपरिणति शिवदानी ॥ छांडत०
यह दुर्लभ नरभव सुसंग लहि, तत्व लखावन वानी ॥
दौल' न कर अब परमें ममता, धर समता सुखदानी ॥ छांडत० ॥

[१०१]

न मानत यह जिय निपट अनारी ॥ टेक ॥

---

१ स्पर्श-विषयके कारण हाथी। २ मछली। ३ सुगन्धका लोलुपी।

सिख देत सुगुरु हितकारी ॥ न० ॥
कुमति कुनारि संग रति मानत, सुमति सुनारि बिसारी ॥ न० ॥
नर परजाय सुरेश चहैं सो, चखि विष-विषय विगारी ॥
त्याग अनाकुल ज्ञान-चाह, पर आकुलता विसतारी ॥ न० ॥
अपना भूल आप समता निधि, भवदुख भरत भिखारी ॥
परद्रव्यन की परिणति को शठ, वृथा बनत करतारी ॥ न० ॥
जिस कारण दव जरत तहां, अभिलाप छटा-घृत डारी ॥
दुखसों डरैं करैं दुख कारन, तैं नित प्रीति करारी ॥ न० ॥
अति दुर्लभ जिनवैन श्रवन कर, संसय मोह निवारी ॥
'दौल' स्व-पर हित अहित जानके, होवहु शिवमग चारी ॥ न० ॥

[१०२]

निज हित कारज करना रे भाई ! निज हित कारज करना ॥
जनम मरन दुख पावत जातें, सो विधि-बन्ध कतरना ॥ रे० ॥
ज्ञान दरश अरु राग फरस रस, निज पर चिह्न भ्रमरना ॥
संधि भेद बुधि छैनी तें करि, निज गहि पर परिहरना ॥ रे० ॥
परिग्रही अपराधी शङ्कै, त्यागी अभय विचरना ॥
त्यों परचाह बन्ध दुखदायक, त्यागत सबसुख भरना ॥ रे० ॥
जो भव भ्रमन न चाहै तो अब, सुगुरु सीख उर धरना ॥
'दौलत' स्वरस सुधारस चाखो, ज्यों विनसे भव भरना ॥ रे० ॥

[१०३]

मैं भाखूं हित तेरा, सुनि हो मन मेरा ॥ मैं० ॥

नर नरकादिक चारो गतिमें, भटको तू अधिकानी ॥
पर परिणातिमें प्रीति करी, निजपरिणति नाहिं पिछानी ॥
सहै दुख क्यों न घनेरा ॥ मैं० ॥
कुगुरु कुदेव कुपंथ पङ्क फंसि, तैं वहु खेद लहायो ॥
शिवसुख दैन जैन जग-दीपक, सो तें कवहुं न पायो ॥
मिटयो न अज्ञान अँधेरा ॥ मैं० ॥
दर्शन ज्ञान चरन निधि तेरी, सो विधि ठगन ठगी है ॥
पांचो इन्द्रिन के विपियन में, तेरी वुद्धि लगी है ॥
भया इनका तू चेरा ॥ मैं० ॥
तू जग जाल विषें वहु उरझ्यो, अव करले सुरझेरा ॥
'दौलत' नेमि चरन पङ्कज का, हो तू भ्रमर सवेरा ॥
नशै ज्यों दुख भव केरा ॥ मैं० ॥

[१०४]

हे हित वांछक प्रानी रे ! कर यह रीति सयानी ॥ टेक ॥
श्रीजिन चरन चितार धार गुन, परम विराग विज्ञानी ॥
हरन भया मय स्व पर दयामय, सरधौ वृप सुखदानी ।
दुविधि उपाधि वाध शिव साधक, सुगुरु भजौ गुणथानी ॥
मोह तिमिर हर मिहर भजो श्रुत, स्यात्पद जास निशानी ।
सप्त तत्व नवअर्थ[1] विचारहु, जो वरने जिनवानी ॥

---

१ जीव, अजीव, आश्रव, वन्ध, सम्वर, निर्जरा और मोक्ष ये

निज पर भिन्न पिछान मान, पुनि होहु आप सरधानी ।
जो इनको विशेष जाने सो, ज्ञायकता मुनि मानी ॥
फिर व्रत समिति गुपति सजि अरु-तजि प्रवृति शुभाश्रवदानी
शुद्ध स्वरूपाचरण लीन ह्वे 'दौल' वरो शिवरानी ॥

[१०५]

जिया तुम चालो अपने देश, शिवपुर थारो शुभथान ॥
लख चौरासी[1] में वहु भटके, लह्यो न सुखको लेश ॥ जिया० ॥
मिथ्या रूप धरें वहु तेरे, भटके वहुत विदेश ॥
विपयादिक अनेक दुख पाये, भुगते वहुत कलेश ॥ जिया० ॥
भयो तिर्यञ्च नारकी नर सुर, करि करि नाना भेप ॥
'दौलतराम' तोड़ जगनाता, सुनो सुगुरु उपदेश ॥ जिया० ॥

[१०६]

मत कीजो जी यारी, घिनगेह देह जड़ जानके ॥ टेक ॥

सात तत्व होते हैं इन्हीं सात तत्वोंमें पुण्य और पाप जोड़ देने पर नौ पदार्थ कहलाते हैं ।

१ चौरासी लाख योनियां निम्न प्रकार हैं—नित्य निगोदकी सात लाख, इतर निगोद (वनस्पति) ७ लाख। प्रत्येक वनस्पति दस लाख, पृथ्वी कायिक सात लाख, जल कायिक सात लाख, अग्निकायक सात लाख, वायु कायिक सात लाख, दो इन्द्रिय जीवोंकी दोलाख, ते इन्द्रियकी दोलाख, चौइन्द्रियकी दो लाख, पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च चार लाख, मनुष्य चौदहलाख, देवगति चार लाख, नरकगति चार लाख। कुल चौरासी लाख हुई ।

मात तात रज वीरज सों यह, उपजी मल-फुलवारी ॥
अस्थि माल पल नसाजाल की, लाल लाल जल क्यारी ॥
कर्म कुरंग थली पुतली यह, मूत्र पुरीष[1] भंडारी।
चर्म मंढी रिपु कर्म घढी धन-धर्म चुरावन हारी ॥
जे जे पावन वस्तु जगतमें, ते इस सर्व विगारी।
स्वेद मेद[2] कफ क्लेद[3] मयी बहु, मद-गद व्याल पिटारी ॥
जा संयोग रोग भव तौलों, जा वियोग शिवकारी।
बुध तासों न ममत्व करें, यह मूढ़मतिन को प्यारी ॥
जिन पोषी ते भये सदोषी, तिन पायो दुख भारी।
जिन तप ठान ध्यान कर शोषी, तिन परनी शिवनारी ॥
सुरधनु शरद-जलद जलबुदबुद, त्यों झट विनशनहारी।
यातें भिन्न जान निज चेतन, 'दौल' होहु शम[4] धारी ॥

[१०७]

मत कीजो जी यारी, यह भोग भुजङ्ग सम जानके ॥ टेक ॥
भुजंग डसत इकबार नसत हैं, ये अनन्त मृतुकारी।
तिसना-तृषा बढ़े इन सेपे, ज्यों पीवे जल खारी ॥
रोग वियोग शोक वन को धन, समता-लता कुठारी।
केहरि करी-अरी[5] न देत ज्यों, त्यों ये दें दुख भारी ॥
इनमें रचे देव तरु थाये, पयो शुभ्र मुरारी[6]।

---

१ विष्टो। २ चरवी। ३मवाद। ४ समान। ५ हाथी का शत्रु सिंह। ६ इनमें (इन्द्रियजन्य विषयों में) जो देवतागण लिप्त

जे विरचे ते सुरपति अरचे, परचे सुख अधिकारी ॥
पराधीन छिनमांहिं छीन हैं, पापबन्ध करतारी ।
इन्हें गिनें सुख आक[1] मांहिं तिन, आम्र तनी बुधिधारी ॥
मीन मतङ्ग पतङ्ग भृङ्ग मृग, इन वश भये दुखारी ।
सेवत ज्यों किंपाकललित[2], परिपाक समय[3] दुखकारी ॥
सुरपति नरपति खगपति हू की, भोग न आस निवारी ।
'दौल' त्याग अब भज विराग सुख, ज्यों पावे शिवनारी ॥

[१०८]

मत राचो धी धारी ! भव रंभ थंभ[4] सम जानके ॥ टेक ॥
इन्द्र-जाल को ख्याल-मोह ठग विभ्रम पास पसारी ।
चहुँगति विपतिमयी जामें जन, भ्रमत भरत दुख भारी ॥
रामा मां मां वामा सुत पितु, सुता श्वसा[5] अवतारी ।
को अचंभ जहां आप आपके, पुत्र दशा विसतारी ॥
घोर नरकदुख ओर न छोर न, लेश न सुख विसतारी ।
सुर नर प्रचुर विषय जुर[6] जारे, को सुखिया संसारी ॥
मण्डल[7]ह्वे आखण्डल[8] छिनमें-नृप कृमि[9] सधन-भिखारी ।
जा सुत विरह मरी हुई बाघिन, ता सुत देह विदारी ॥

होते हैं, वे वृक्षादि वनस्पति काय प्राप्त करते हैं। नारायण ने भी इसी कारण नरक पाया। १ विषफल। २ विषमय इन्द्रायन फलके समान प्यारे। ३ उदयआते समय। ४ केलाके थंभसमान निःसार। ५ बहिन। ६ ज्वर बुखार। ७कुत्ता। ८ देव ९ लट।

शिशु न हिताहित ज्ञान, तरुण उर मदनदहन परजारी।
वृद्ध भये विकलाङ्गी[1] थाये, कौन दशा सुखकारी॥
यों असार लखि छार भव्य झट, भये मोखमग चारी।
यातें होहु उदास 'दौल' अब, भज जिनवर जगतारी॥

[१०९]

तू काहे करत रति तनमें, यह अहिनमूल जिम कारा सदन[2]॥
चरम पिहित पल रुधिर लिप्त, मलद्वार स्रवें छिन छिन में॥
आयुनिगड़[3] फंसि विपति भरे, सो क्यों न चितारत मन में॥
सुचरण लाग त्याग अब याको, जो न भ्रमें भव-वन में॥
'दौल' देह सों नेह, देह को हेतु कह्यो ग्रन्थन में॥

[११०]

कुमति कुनारि नहीं है भली रे, सुमतिनारि सुन्दर गुणवाली॥
वासों विरचि रचो नित यासों, जो पावो शिवधाम गली रे।
वह कुवजा दुखदा यह राधा, वाधा टारन करनरली[4] रे॥
वह कारी परसों रति ठानत, मानत नाहिं न सीख भली रे।
यह गोरी चिद्गुण सहचारिन, रमति सदा स्व-समाधि-थली रे॥
वा संग कुथल कुयोनि वस्यो नित, तहां महादुख वेलि फली रे।
या संग रसिक भविनकी निजमें परिणति 'दौल' भई-न चलीरे॥

[१११]

---

१ आकुलितअंग। २ कारागृह। ३ आयु के वन्धन में। ४ इन्द्रियों के विलास।

जम आन अचानक दावेगा ॥ टेक ॥

छिन छिन कटत घटत थिति ज्यों, जल अंजुलिका झर जावेगा ॥

जन्म ताल तरु तें पर जिय फल, कों लग बीच रहावेगा।

क्यों न विचार करै नर आखिर, मरन–मही में आवेगा ॥

सोवत मृत जागत जीवत ही, श्वासा जो थिर थावेगा।

जसें कोऊ छिपै सदा सौं, कबहू अवसि पलावेगा ॥

कहूँ कबहूँ कैसे हू कोऊ, अन्तक[1] से न बचावेगा।

सम्यकज्ञान पियूष पिये सों, 'दौल' अमर पद पावेगा ॥

[११२]

और अबै न कुदेव सुहावे, जिन थांके चरनन रति जोरी।

कामकोह वश गहैं अशन असि, अङ्क निशङ्क धरें तिय गोरी।

औरन के किम भाव सुधारें, आप कुभाव भाव धर घोरी ॥

तुम विन मोह अकोह[2] छोह विन, छके शान्तिरस पीय कटोरी।

तुम तज सेय अमेय भरी जो, जानत हो विपदा सब मोरी।

तुम तज तिन्हें भजें शठ जो, सो दाख न चाखत खात निगोरी[3]।

हे जगतार उधार 'दौल' को, निकट विकट भवजलधि हिलोरी ॥

[११३]

मोहिड़ा रे जिय ! हितकारी न सीख सम्हारे ॥ टेक ॥

भव वन भ्रमत दुखी लखि याको, सुगुरु दयाल उचारें ॥

---

१ काल। २ क्रोध रहित। ३ निंबोरी अर्थात् नीम वृक्ष का फल।

विषय भुजङ्गम सङ्ग न छोड़त, जो अनन्त भव मारै ।
ज्ञान विराग पियूष न पीवत, जो भव-व्याधि विडारै ॥
जाके सङ्ग दुरें अपने गुण, शिवपद अन्तर पारे ।
ता तन को अपनाय आप–चिन्मूरत को न निहारें ॥
सुत दारा धन काज सांज, अघ आपन काज विगारें ।
करत आपको अहित आपकर, ले कृपान जल दारै ॥
सही निगोद नरक की वेदन, वे दिन नांहिं चितारै ।
'दौल' गई सो गई अबहू नर ! धर दृग चरन निहारै ॥

[११४]

विषयोंदा मद भानै, ऐसा है कोई वे ॥
विषय दुःख अरु दुखफल तिनको, यों नित चित्त न ठानै ॥
अनुपयोग उपयोग स्वरूपी, तन चेतन को मानें ।
वरनादिक रागादि भाव तैं, भिन्न रूप निज जानैं ॥
स्व पर जान रुप राग हान, निजमें निजपरिणति सानै ।
अन्तर बाहिर को परिग्रह तजि, 'दौल' वसे शिवथानैं ॥

[११५]

वामा घर बजतसवधाई, चल देख री माई ॥ टेक ॥
सुगुन रास जग आस भरन, जिन जने पार्श्व जिनराई ।
श्री ह्रीं धृति कीरति बुधि लछमी, हर्ष न अङ्ग समाई ॥ वामा० ॥
वरन वरन मणि चूर शची, सब पूरत चौक सुहाई ।
हा हा हू हू नारद तुम्बर, गावत श्रुत सुखदाई ॥ वामा० ॥

तांडव नृत्य नटत हरिनट, तिन नख नख सुरीं नचाईं।
किन्नर कर धर वीन वजावत, दृग मनहर छवि छाई ॥ वामा० ॥
'दौल' तासु प्रभु की महिमा, सुर गुरु पै कहिय न जाई।
जाके जन्म समय नरकन में, नारकि साता पाई ॥ वामा० ॥

[११६]

वारी हो वधाई या शुभ साजै ॥ टेक ॥
विश्वसेन ऐरादेवी गृह, जिनभव मङ्गल[1] छाजै ॥ वारी० ॥
सब अमरेश अशेष विभवजुत, नगर नागपुर आये;
नागदत्त[2] सुर इन्द्र वचन तें, ऐरावत सजि धाये;
लख जोजन शत वदन[3] वदन वसु रद[4] प्रति सर ठहराये;
सर सर सौ पन-वीस नलिन[5] प्रति पद्म पचीस विराजै ॥ वारी० ॥
पद्म पद्म प्रति अष्टोत्तर शत, ठने सुदल[6] मनहारी;
ते सब कोटि सताइस पै, मुद जुत नाचत सुरनारी;
नवरस गान ठान कानन को, उपजावत सुख भारी;
वङ्क लैलावत लङ्क लचावत दुति लखि दामिन लाजै ॥ वारी० ॥
गोप गोपतिय[7] जाय माय ढिग, करी तास थुति भारी;
सुखनिद्रा जननी को करि, नमि अङ्क लियो जगतारी;
लै वसु मङ्गलद्रव्य दिशसुरीं[8], चलीं अग्र शुभकारी;

---

१ भगवान के जन्मका उत्सव। २ नागेन्द्र। ३ मुख। ४ दांत। ५ एक सौ पच्चीस कमलिनी। ६ मनोहर पत्ते। ७ इन्द्राणी। ८ दिक्कन्यका देवियां।

हरख हरी चख सहसकरी, तब जिनवर निरखन काजै ॥ वारी० ॥
ता गजेन्द्र पै प्रथम इन्द्र ने, श्री जिनेन्द्र पधराये;
द्वितिय[1] छत्र दिय तृतिय तुरिय[2] हरि मुदधर चमर ढुराये
शेषशक्र[3] जय शब्द करत, नभ लङ्घ सुराचल आये;
पांडुशिला जिन थापि नची शचि, दुन्दुभि कोटिक बाजै ॥ वारी० ॥
पुनि सुरेश ने श्री जिनेश को, जन्म न्हवन शुभ ठानो;
हेम कुम्भ सुर हाथहिं हाथन, क्षीरोदधि जल आनो;
वदन उदर अवगाह एक सौ, वसु योजन परमानो;
सहस आठ कर करि हरि जिनशिर, ढारत जयधुनि गाजै ॥ वारी० ॥
फिर हरि नारि सिंगार स्वामि तन, जजे सुरा जस गाये;
पूरबली विधि करि पयान, मुद ठान पिता घर लाये;
मणिमय आंगनमें कनकासन, पै श्री जिन पधराये;
तांडव-नृत्य कियो सुरनायक, शोभा सकल समाजै ॥ वारी० ॥
फिरहरि जगगुरु पिता तोष[4], शान्तेश धरो जिन नामा;
पुत्र जन्म उत्साह नगर में, कियो भूप अभिरामा;
साधिसकल निज निज नियोग, सुर असुर गये निजधामा;
त्रिपदधारि[5] जिन चारु चरनकी, 'दौलत' करत सदा जै ॥ वारी० ॥

---

१ द्वितीय स्वर्ग का ऐशान इन्द्र । २ तीसरे चौथे स्वर्गके सानत्कुमार और माहेन्द्र । ३ बाकी के सब इन्द्र और देवगण । ४ जिनेन्द्र भगवान के पिता की स्तुति करके । ५ तीर्थङ्करत्व, चक्रवर्तित्व, और कामदेवत्व इन तीन पदों के धारी ।

[११७]

चलि सखि देखन नाभिराय घर, नाचत हरि-नटवा ॥ टेक ॥
अद्भुत ताल मान शुभलय युत, चवत[1] राग पटवा[2] ॥
मणिमय नूपुरादि भूषन दुति, युत सुरंग पटवा[3] ।
हरि कर नखन नखन पै सुरतिय, पग फेरत कटवा[4] ॥
किन्नर कर धर बीन बजावत, लय लावत झटवा ।
'दौलत' ताहि लखे दृग तृपते, सूझत शिव-बटवा ॥

[११८]

ज्ञानी ऐसी होली मचाई ॥ टेक ॥
राग कियो विपरीत विपन-घर, कुमति कुसौति भगाई;
धार दिगम्बर कीन्ह सुसम्बर, निज-पर भेद लखाई;
घात विषियन की बचाई ॥ ज्ञानी० ॥
कुमति सखा भज ध्यान भेद सज, तन में तान उड़ाई;
कुम्भक ताल मृदङ्ग सों पूरक, रोचक बीन बजाई;
लगन अनुभव सों लगाई ॥ ज्ञानी० ॥
कर्मबली ता रूप-नाम अरि, वेद सुइन्द्रि गनाई;
दे तप अग्नि भस्म करि तिनको, धूलि अघाति उड़ाई,
करी शिवतिय सों मिलाई ॥ ज्ञानी० ॥
ज्ञान को फाग भागवश आवे, लाख करो चतुराई;

---

१ गाते है । २ छः प्रकार का राग । ३ रंगीन वस्त्र । ४ कमर ।

सो गुरु दीनदयाल कृपा कर, 'दौलत' तोहि बताई;
नहीं चित से विसराई ॥ ज्ञानी० ॥

[११९]

मेरो मन खेलत ऐसी होरी ॥ टेक ॥
मन मिरदङ्ग साजि कर त्यारी, तन को तमूरा बनो री;
सुमति सुरंग सरंगी बजाई, ताल दोऊ करजोरी;
राग पांचौं पद को री ॥ मेरो० ॥
समकृत रूप नीर भर झारी, करुना केशर घोरी;
ज्ञानमई लेकर पिचकारी, दोऊ कर मांहिं सम्होरी;
इन्द्रिय पांचो सखि बोरी ॥ मेरो० ॥
चतुरदान को है गुलाल सो, भर भर मूंठ चलो री;
तप मेवा सों भर निज झोरी, यश को अबीर उड़ो री;
रंग जिनधाम मचो री ॥ मेरो० ॥
'दौलत' बाल खेलें अस होरी, भव भव दुःख टलो री;
शरना लै इक श्री जिन को री, जग में लाज रहे तोरी;
मिलै फगुआ शिवगोरी ॥ मेरो० ॥

[१२०]

लाल कैसे जावोगे, अशरन शरन कृपाल ॥ लाल० ॥
इक दिन सरस बसन्त समय में, केशव की सब नारी;
प्रभु प्रदक्षिणां रूप खड़ी हे, कहत नेमि पर वारी ॥
कुमकुम लै मुख मलत रुकनिनी, रंग छिड़कत गांधारी;

सतभामा प्रभु ओर जोर कर, छोरत है पिचकारी ॥
व्याह कबूल करो तो छूटो, इतनी अरज हमारी;
ओङ्कार[1] कहकर प्रभु मुलके, छांड दिये जगतारी ॥
पुलकितवदन मदन-पितु-भामिन[2] निज निज सदन सिधारीं;
'दौलत' जादववंश व्योम-शशि, जयो जगत हितकारी ॥

[१२१]

आज गिरिराज निहारा, धन-भाग हमारा ॥ टेक ॥
सिखिर सम्मेद नामहै जाको, भू पर तीरथ भारा ॥ आज० ॥
तहां बीस जिन मुक्ति पधारे, और मुनीश अपारा;
आरजभूमि शिखामणि सोहै, सुर नर मुनि-मन प्यारा ॥ आज० ॥
तहँ थिर योग धार योगीश्वर, निज-पर तत्व विचारा;
निजस्वभावमें लीन होयकर, सकलविभाव निवारा ॥ आज० ॥
जाहि जजत भवि भावनतें जब-भवभव पातक टारा;
जिनगुन धार धरम धन सञ्चो, भव दारिद हरतारा ॥ आज० ॥
इक नव नभ इक वर्ष माघ बदि चौदश[3] वासर सारा,
भाथ नाय जुत साथ 'दौल' ने, जय जय शद्ब उचारा ॥ आज० ॥

[१२२]

अब मोहि जानि परी, भवोदधि तारन को हैं जैन ॥ अब० ॥
मोह तिमिर तें सदाकल से, छाय रहे मेरे नैन;

---

१ स्वीकार। २ कामदेव प्रद्युम्न के पिता श्री कृष्ण की स्त्रियां।
१४मत्रा ३ सम्वत् १९०१ माघवदी चतुर्दशी।

ताके नाशन काज लियां है, अञ्जन जैन सु ऐन ॥ अब० ॥
मिथ्यामती भेष को लेकर, भासत हैं जों बैन;
सो बे बैन असार लखैं हैं, ज्यों पानी के फैन ॥ अब० ॥
मिथ्यामती वेल जग फैली, सो दुख-फल की दैन;
सत्गुरु भक्ति-कुठार हाथ ले, छेद-लियो अति चैन ॥ अब० ॥
जा विन जीव अनादिकालतें विधिवश सुखन लहैन;
अशरन-शरन अभय 'दौलत' अब, भजो रैनदिन जैन ॥ अब० ॥

[१२३]

धन धन साधर्मी जन मिलन की घरी;
बरसत भ्रम ताप हरन, ज्ञान घन-झरी ॥ टेक ॥
जाके विन पाये भव-विपति अति भरी;
निज-पर हित अहित की, कछू न सुधि परी ॥ धन० ॥
जाके परभाव चित, सु थिरता करी;
संसय भ्रम मोह की, सु वासना टरी ॥ धन० ॥
मिथ्या गुरु देव सेव टेव परिहरी;
वीतराग देव सुगुरु, सेव उर धरी ॥ धन० ॥
चारो अनुयोग[1] सुहित देश[2] दिठि परी;
शिवमग के लाह की सु चाह विस्तरी ॥ धन० ॥
सम्यक तरु धरनि, येह करन करि हरी[3];

---

१ प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग, द्रव्यानुयोग।
२ उपदेश। ३ इन्द्रिय रूपी हस्ती के लिये सिंह समान।

भव जल को तरनि, समर[1] भुजग विषजरी ॥ धन० ॥
पूरव भव या प्रसाद, रमनि शिव वरी;
सेवो अब 'दौल' याहि, बात ये खरी ॥ धन० ॥

[१२४]

* जकड़ी *

वृषभादि जिनेश्वर ध्याऊँ, शारद अम्बा चित लाऊँ;
द्वै विधि परिग्रह परिहारी, गुरु नमहुँ स्व पर हितकारी ॥
हितकार तारक देव श्रुत गुरु, परख निज उर लाइये;
दुखदाय कुपथ विहाय शिव, सुखदाय जिनवृष ध्याइये ॥
चिरतें कुमग पगि मोह ठग करि; ठग्यो भवकानन पर्यो;
च्यालीस द्वै लख योनिमें, जर मरन जामन दव जर्यो ॥
जब मोहरिपु दीनी घुमरिया, तस वश निगोद में परिया;
तहँ स्वास एक के माहीं, अष्टादश मरन लहा हीं ॥
लहि मरन अर्न्तमुहूर्त[2] में, छ्यासठ सहस शत तीन ही-
षट तीस, काल अनन्त यों, दुख सहे उपमा ही नहीं; ॥
कबहू लही वर आयु क्षिति[3] जल, पवन पावक तरु तणी;
तस भेद किञ्चित कहूँ सो सुन, कह्या जो गौतम गणी ॥
पृथिवी दो भेद बखाना, मृदु माटी कठिन पखाना[4];
मृदु द्वादश सहस बरस की, पाहन बाईस सहस की ॥

१ कामदेव । २ अड़तालीस मिनट । ३ पृथ्वी । ४ पत्थर।

पुनि सहससात कही उदक[1], त्रय सहस वर्ष समीर की;
दिन तीन पावक दशसहस तरु, प्रमित नाश लुपीर की ? ॥
विन-घात सूक्ष्म देह धारी, घात-जुत गुरु तन लह्यो;
तहँ खनन तापन जलन व्यञ्जन, छेद भेदन दुख सह्यो ॥
शंखादि द्वयेन्द्री प्रानी थिति, द्वादश वर्ष वखानी;
यूंकादि ते इन्द्री हैं जे, वासर उनचास जियें ते ॥
जीवै छः मास अली प्रमुख, व्यालीस सहस उरग तनी;
खग की बहत्तर सहस नव-पूर्वाङ्ग सरिसृप[2] की भनी ॥
नर मत्स्य[3] पूरव कोटि की थिति, कर्मभूमि वखानिये;
जलचर विकल विन भोग भू नर-पशु[4] त्रिपल्य प्रमानिये ॥
अघ वश कर नरक बसेरा, दुख भुगते कष्ट घनेरा;
छेदै तिल तिल तन सारा, छेपै द्रहपूत[5] मझारा ॥
मंझार वज्रानिल पचावें: धरहिं शूली ऊपरें;
सींचैं जु खारे-वारि सों, दुठ कहैं व्रण[6] नीके करें ॥
वैतरणि सरिता समल जल अति, दुखद तरु सेंवल तने;
अति भीम बन असिक्रान्त[7] समदल, लगत दुख देवें धने ॥
तिस भू में हिम गरमाई, सुरगिरि सम अस गल जाई;

---

१ जल। २ सर्प विशेष। ३ मच्छ ४ भोग भूमि के मनुष्य और पशु। ५ दुर्गन्धि से भरे तालाव में। ६ फोड़ा। ७ तलवार की धार समान पत्ते।

तामें थिति सिन्धु तनी है, यों दुखद नरक अवनी है ॥
अवनी तहां की तें निकसि, कबहू जनम पायो नरो;
सर्वाङ्ग सकुचित अति अपावन, जठर[1] जननी के परो ॥
तहँ अधोमुख जननी रसांश, थकी जियां नव मास लों;
ता पीर में कोई सीर[2] नाहीं; सहै आप निकास लों ॥
जनमत जो सङ्कट पायो, रसना तें जात न गायो;
लहि बालपने दुखभारी, तरुनापो लह्यो दुखकारी ॥
दुखकारि इष्ट-वियोग अशुभ, संयोग सोग सरोगता;
पर-सेव ग्रीपम शीत पावस, सहै दुख अति भोगता ॥
काहू कु तिय काहू कु बांधव, कहुँ सुता व्यभिचारिणी;
किसहू विसनरत पुत्र दुष्ट, कलत्र[3] कोऊ पर ऋणी ॥
वृद्धापन के दुख जेते, लखिये सब नैनन तें तें;
मुख लार बहै तन हाले, विन शक्ति न वसन संभाले ॥
न संभाल जाके देह की, तो कहो वृप की क्या कथा;
तब ही अचानक आन जम गहै, मनुज-जन्म गयो वृथा ॥
काहू जनम शुभ ठान किञ्चित, लह्यो पद चउदेव को;
अभियोग किल्विप[4] नाम पायो, सह्यो दुख परसेवको ॥
तहँ देख महा सुर-ऋद्धी, झूरो विपयन करि गृद्धी;
कबहू परिवार नसानो, शोकाकुल ह्वे विललानो ॥

---

१ उदर। २ सहाई। ३ स्त्री। ४ सेवक जाति के देव।

विललाय जब अति मरन निकट्यो, सह्यो सङ्कट मानसी;
सुर-विभव दुखद लगी तबै, जब लगी माल मलान सी ॥
तबही जु सुर उपदेश हित, समुझाइयो समुझ्यो न त्यों;
मिथ्यात्वजुत च्युत कुगति पाई, लहै सो फिर स्वपद क्यों ॥
यों चिर भव अटवी माहीं, किञ्चित साता न लहाई;
जिनकथित धरम नहिं जान्यों, पर माहिं अपनपो मान्यों ॥
मान्यों न सम्यक त्रयात्मक, आतम अनातम में फंस्यो;
मिथ्या चरण दृग ज्ञान रंज्यो, जाय नवग्रीवक बस्यो ॥
पै लह्यो नहिं जिनकथित-शिवमग, वृथा भ्रमभूल्यो जिया;
चिद्‌भाव के दरसाव विन सब, गये अहले तप किया ॥
अब अद्‌भुत पुण्य उपायो, कुल जाति विमल तू पायो;
यातें सुन सीख सयाने, विषयन तें रति मत ठाने ॥
ठाने कहा रति विषय में, ये विषम विषधर सम लखौ;
यह देह मरत अनन्त इनको, त्यागि आतमरस चखौ ॥
या रस रसिक जन बसे शिव, अब बसें पुनि वसि हैं सही;
'दौलत' स्वरचि परविरचि सतगुरु, सीख नित उरधर यही ॥

[१२५]

* जकड़ी *

अब मन मेरा वे ! सीख वचन सुन मेरा;
भज जिनवर पद वे, ज्यों विनसे दुख तेरा ॥
विनसे दुख तेरा भव-वन केरा, मन वच तन जिनचरन भजौ;

पञ्चकरन वश राख सु ग्यानी, मिथ्यामत मग दौर तजौ ॥
मिथ्यामत मग-पगि अनादि तें, तैं चहुँगति कीना फेरा;
अबहू चेत अचेत होय मत, सीख वचन सुन मन मेरा ॥

इस भव-वन में वे, तें साता नहिं पाई;
वसु विधि वश ह्वे वे, तें निज सुधि विसराई ॥

तैं निज सुधि विसराई भाई, तातें विमल न बोध लहा;
पर परिणति में मगन भयो तू जन्म जरामृत दाह दहा ॥
जिनमत सार सरोवर को अब, गाहि लाग निज चिन्तन में;
तो दुखदाह नसै सब नांतर, फेर फंसे इस भव-वन में ॥

इस तनमें तू वे, क्या गुन देख लुभाया;
महा अपावन वे, सतगुरु याहि बताया ॥

सतगुरु याहि अपावन गाया, मल मूत्रादिक का गेहा;
कृमकुल-कलित लखत घिन आवे; या सों क्या कीजे नेहा ॥
यह तन पाय लगाय आपनी, परिणति शिवमग साधन में;
तो दुखद्वंद नसै सब तेरा, यही सार है इस तन में ॥

भोग भले न सही, रोग शोक के दानी;
शुभ गति रोकन वे, दुर्गति पथ अगवानी ॥

दुर्गति पथ अगवानी हैं जे, जिनकी लगन लगी इनसों;
तिन नाना विधि विपति सहीहै, विमुख भयो निजसुख तिनसों ॥
कुञ्जर झप अलि शलभ हिरन इन, एक अक्ष वश मृत्यु लही;
या तें देख समझ मन माहीं, भव में भोग भले न सही ॥

काज सरैं तब वे, जब निजपद आराधैः
नसैं भवावलि वे, निराबाध पद लाधै ॥
निराबाध पद लाधै तब तोहि, केवल दर्शन ज्ञान जहांः
सुखअनन्त अति इन्द्रिय मण्डित, वीरज अचल अनन्त जहां ॥
ऐसा पद चाहै तो भज निज, बार बार अब को उचरैं;
'दौल' मुख्य उपचार रतनत्रय, जो सेवै तो काज सरैं ॥

चौवीस दण्डक

* दोहा *

वन्दौं वीर सुधीर को, महावीर गम्भीर ।
वर्धमान सन्मति महा, देव देव अतिवीर ॥
गत्यागत्य[1] प्रकाश जो, गत्यागत्य वितीत ।
अद्भुत अतिगति सुगति जो, जैनेश्वर जगतीत ॥
जाकी भक्ति विना विफल, गये अनन्ते काल ।
अगणित गत्यागति धरीं, घद्यो न जग जञ्जाल ॥
चौबीसौ दण्डक[2] विषै, धरी अनन्ती देह ।

---

१ जन्म मरण की क्रिया । २ चौवीस दण्डक निम्न प्रकार हैं-
१ नारकी, २ भवनवासीदेवों के दश भेद, १२ ज्योतिषी देव,
१३ व्यन्तर देव, १४ स्वर्ग निवासी देव, १५ पृथ्वीकाय, १६ जल
काय, १७ अग्नि काय, १८ वायुकाय, १९ वनस्पिति काय, २०
दो इन्द्रिय जीव, २१ तेइन्द्रिय जीव, २२ चार इन्द्रिय जीव, २३
मनुष्य २४ पञ्चेन्द्रिय तियञ्च ।

लख्यो न निजपद ज्ञानबिन, शुद्ध स्वरूप विदेह ॥
जिनवानी परसाद तें, लहिये आतम ज्ञान ।
दहिये गत्यागति सबै, गहिये पद निर्वान ॥
चौबीसौं दण्डक तनी, गति आगति सुनि लेहु ।
सुनकर विरक्त भाव धरि, भवजल को जल देहु ॥

* चौपाई *

पहिलो दण्डक नारकि तनो, भवनपती दश दण्डक भनो ।
ज्योतिष व्यन्तर स्वर्ग-निवास, थावर पञ्च महा दुख रास ॥
विकलत्रय अरु नर तिर्यञ्च, पञ्चेन्द्रिय धारक परपञ्च ।
यह चौबीस जु दण्डक कहे, अब सुन इनमें भेद जु लहे ॥
नारक की गति[1] आगति[2] दोय, नर तिर्यञ्च पञ्चेन्द्रिय जोय ।
जाय असैनी पहली लगै, मन विन हिंसा कर्म न पगै ॥
सरी-सर्प दूजे लौं जाय, अरु पक्षी तीजे लौं थाय ।
सर्प जाय चौथे लौं सही, नाहर पञ्चम आगे नहीं ॥
नारी छट्टे लग हीजाय, नर अरु मच्छ सातवें थाय ।
ये तो नारक आगति कही, अब सुन नारक की गति सही ॥
नरक सातवें को जो जीव, पशुगति ही पावे दुखदीव ।
अरु सब नारक मर नर पशू दोऊ गति आवें पर वशू ॥
छट्टे को निकस्यो जु कदापि, सम्यक सह श्रावक निष्पाप ।

---

१ गमन करना अर्थात् मरण । २ आना अर्थात् जन्म ।

पञ्चम निकस्यो मुनि हू होय, चौथे कौ केवलि हू कोय ॥
तृतीय नरक को निकस्यो जीव, तीर्थङ्कर भी हो जगपीव।
यह नारक की गत्यागती, भाषी जिनवानी में सती ॥
तेरह दण्डक देवनिकाय, तिनके भेद सुनो मनलाय।
नर तिर्यञ्च पञ्चेन्द्री विना, औरन को नहिं सुरपद गिना ॥
देव मरै गति पांच लहाहिं, भू जल तरुवर नर तिर[1] माहिं।
दूजे स्वर्ग ऊपरले देव, थावर ह्वै न कह्यौ जिनदेव ॥
सहस्रार से ऊपर खिरा, मरकर होवे निश्चय नरा।
भोगभूमि के तिर्यग नरा, दूजे देव लोक तें परा ॥
जाय नहीं यह निश्चय कही, देवन भोगभूमि नहिं गही।
कर्मभूमियां नर अरु ढोर[2], इन विन भोगभूमि की ठौर ॥
जाइ न तातें आगति दोय, गति इनकी देवन की होय।
कर्म भूमियां तिर्यग बुद्ध, श्रावक व्रत धर बारम शुद्ध ॥
सहस्रार ऊपर तिर्यञ्च, जाय नहीं तज ह्वै परपञ्च।
अव्रत सम्यकदृष्टी नरा, बारम तें ऊपर नहिं धरा ॥
अन्यमती पञ्चागनि साधि, भवनत्रिक[3] में जाय न बाद।
परिव्राजक तिरदण्डी देह, पञ्चम परै न उपजै जेह ॥
परमहंस नामा परमती, सहस्रार ऊपर नहिं गती।
मोक्ष न पावें परमत माहिं, जैन विना नहिं कर्म नसाहिं ॥

१तिर्यञ्च। २ पंचेन्द्री तिर्यञ्च। ३भवनवासी व्यन्तर व ज्योतिषीदेव।

श्रावक आर्य अणुव्रत धार, बहुरि श्राविका-गण अविकार।
सोलह स्वर्ग परे नहिं जांय, ऐसो भेद कह्यो जिनराय॥
द्रव्यलिंग धारी जे जती, नवग्रीवक ऊपर नहिं गती।
नवहि अनुत्तर पञ्चोत्तरा[1], महामुनी विन और न धरा॥
केई चार जीव सुर भया, पर केइक पद नाहीं गहा।
इन्द्र भयो न शची हू भयो, लोकपाल[2] कबहू नहिं थयो॥
लौकांतिक[3] हूवो न कदापि, नहीं अनुत्तर पहुँचो आप।
ये भव धर बहु भव नहिं धरैं, अल्पकाल में मुक्तहि वरैं॥
है विमान सरवारथसिद्ध, सब तें ऊँचो अतुल सुरिद्ध।
ताके शिर पर है शिवलोक, परे अनन्तानन्त अलोक॥
गत्यागत्य देवगति भनी, अब सुन भ्रात मनुपगति तनी।
चौवीसौ दण्डक के माहिं, मनुप जाहि यामें शक नाहिं॥
मोक्षहु पावे मनुप मुनीश, सकल धरा को जो अवनीश।
मुनि विन मोक्ष नहीं कोई वरैं, मनुप विना नहि मुनि ह्वै तरैं॥
सम्यकदृष्टी जे मुनिराय, भव जल उतरें शिवपुर जांय।
तहां जाय अविनाशी होय, फिर पीछे आवे नहिं कोय॥
रहैं शाश्वते शिवपुर माहिं, आतम राम भयो शक नाहिं।
गति पच्चीस कहीं नर तनी, आगति पुनि बाईसहि भनी॥

---

१ सोलह स्वर्गोंसे ऊपरके विमान। २ दिशाओंके रक्षक देव। ३ पांचवें स्वर्ग की आठों दिशाओं में रहने वाले आठ प्रकार के देव (लौकान्तिक देव एक भवावतारी होते हैं)

तेजकाय अरु वायु जु काय, इन बिन और सबै नर थाय ।
गति पचीस आगति बाईस, मनुष तनी जो भाखी ईस ॥
ताहि सुरासुर आतम रूप, ध्यावें चिदानन्द चिद्रूप ।
तौ उतरौ भव-सागर जिया, और न शिवपुर मारग लिया ॥
यह सामान्य पुरुष की कही, अब सुन पदवीधर की सही ।
तीर्थङ्कर की दो आगती, सुरग नरक तें आवें सती ॥
फेरि न गति धारें जगदीश, जाय विराजें जगके शीश ।
चक्री अर्धचक्रि अरु हली, सुरग लोक तें आवें बली ॥
इनकी आगति एकहि जान, गति की रीति कहूँ जो बखान ।
चक्री की गति तीन जु होय, सुरग नरक अरु शिवपुर जोय ॥
तप धारें तो शिवपुर जाहिं, मरहिं राज में नरकहिं ठाहिं ।
आखिर में ह्वै पद निर्वान, पदवी धारक बड़े प्रधान ॥
बलभद्रन की दोयहि गती, स्वर्ग जांहिं कै ह्वैं शिवपती ।
तप धारें यह निश्चय भया, मुक्ति-पात्र यह श्रुत में कहा ॥
अर्धचक्रि को एकहि भेद, नारकि होय लहै अति खेद ।
राज माहिं ये निश्चय मरें, तद्भव मुक्ति-पन्थ नहिं धरें ॥
आखिर पावे जिनवर लोक, पुरुष शलाका शिव के थोक ।
यह पद कबहु न पाये जीव, यह पद पाय होय शिव पीव ॥
औरहु पद कैयक नहिं रहे, कुलकर नारद पदहु न लहे ।
रुद्र भये न मदन ना भये, जिनवर मात पिता नहिं थये ॥
यह पद पाय जीव नहिं रुलै, थोड़े ही दिनमें जिन सम तुलै ।

इनकी आगति श्रुत में जान, गति को भेद कहूँ जो बखान ॥
कुलकर देव लोक ही गहैं, मदन सुरग शिवपुर को लहैं।
नारद रुद्र अधोगति जांय, सहैं कलेश महादुख दाय॥
जन्मान्तर पावैं निर्वान, बडे पुरुष जे सूत्र प्रमान।
तीर्थङ्कर के पिता प्रसिद्ध, स्वर्ग 'जाहिं कै ह्वै हैं सिद्ध॥
माता स्वर्ग लोक ही जाय, आखिर शिवपुर लोक लहाय।
यह सब रीति मनुष की कही, अब सुन तिर्यञ्चन गति सही॥
पचेंन्द्रिय पशु मरण कराय, चौवीसो दण्डक में जाय।
चौवीसौ दण्डक तें मरै, पशू होय तो नाहिं न करै॥
गति आगतीं कहीं चौवीस, पंचेद्री पशु की जिन ईश।
जो परमेश्वर का पथ गहो, चौविस दण्डक नाहीं लहो॥
विकलत्रय की दश ही गती, दश आगतीं कहीं जिनपती।
पांचो थावर विकल जु तीन, नर तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय लीन॥
इनहीं दश में उपजै जाय, पृथ्वी पानी तरुवर काय।
इनहीं तें विकलत्रय आय, इनहीं दश में जन्म कराय॥
नारक विन सब दण्डक जोय, पृथ्वी पानी तरुवर सोय।
तेज वायु मरि नव में जाय, मनुष होय नहिं सूत्र कहाय॥
थावर पंच विकलत्रय ढोर, ये नवगति भाखी मद मोर।
दश तें आवे तेज अरु वायु, होय सही गावें जिनराय॥
ये चौवीस-दण्डके कहे, इनको त्याग परम पद लहे।
इनमें रुलै सु जग को जीव, इनतैं रहित सु त्रिभुवन पीव॥

जीव–ईश में और न भेद, ये करमी वे करम उछेद।
कर्म बन्ध–जौलों जग-जीव, नाशे कर्म होहि शिव-पीव ॥

* दोहा *

मिथ्या अविरत योग अरु, मद परमाद कषाय;
इन्द्रिय विषय जु त्याग यें, भ्रमन दूर जाय।
जिन विन गति भव तें धरी, भई नहीं सुरभ्झार;
जिन-मारगउर धारिये, ह्वै हैं भवदधि–पार।
जिन भज सब परपंच तज, बड़ी बात है यह;
पंच महाव्रत धारि कै, भव जल को जल देह।
अन्तःकरण जु शुद्ध ह्वै; जिनधर्मी अभिराम;
भाषा-कारण कर सकूं, भापी 'दौलतराम'।



स्वर्गीय कविवर पं० दौलतराम जी कृत

छहढाला

पहली ढाल

॥ मंगलाचरण ॥

(सोरठा)

तीन भुवन[1] में सार, वीतराग विज्ञानता।
शिव-स्वरूप[2] शिवकार, नमहु त्रियोग सम्हारि कें॥

❋ चौपई ❋

जे त्रिभुवन में जीव अनन्त[3], सुख चाहैं दुख तें भयवन्त।
तातें दुखहारी सुखकारि; कहैं सीख गुरु करुना धारि॥
ताहि सुनो भवि मन थिर आन, जो चाहो अपनो कल्यान।
मोह महा-मद पियो अनादि, भूलि आपको भरमत वादि[4]॥
तास भ्रमण की है बहु कथा, पै कछु कहूँ कही मुनि–यथा।
काल अनन्त निगोद मंझार, बीतो एकेन्द्रिय तन धार॥
एक स्वांस[5] में अठ-दश बार, जन्म्यो मर्यो भर्यो दुख भार।

१ तीन लोक—ऊर्ध्व, मध्य और पाताल। २ आनन्द रूप। ३ अप्रमाण। ४ व्यर्थ। ५ एक सैकिंड से कुछ कम (४८ मिनट,

निकसि भूमि जल पावक भयो, पवन प्रतेक-वनस्पति[1] थयो ॥
दुर्लभ लहि ज्यों चिन्तामणी, त्यों पर्याय-लही त्रस[2] तणी।
लट[3] पिपीलि[4] अलि आदि शरीर, धर धर मर्यो सही वहु पीर॥
कबहूँ पंचेन्द्रिय पशु भयो, मन विन निपट अज्ञानी थयो।
सिंहादिक सैनी ह्वै क्रूर, निबल पशू हति खाये भूर॥
कबहूँ आप भयो बलहीन, सबलनि करि खायो अतिदीन।
छेदन-भेदन भूख पियास, भार वहन हिम आतप त्रास।
वध बन्धन आदिक दुख घने, कोटि जीभ तें जात न भने।
अति संक्लेश भाव तें मर्यो, घोर शुभ्र-सागर[5] में पर्यो॥
तहां भूमि परसत दुख इसो, वीछू सहस डसें तन तिसो।
तहां राध श्रोणित वाहिनी, कृमि कुल-कलित देह दाहिनी[6]॥
सेमर-तरु[7] जुत दल असिपत्र, असि ज्यों देह विदारें तत्र।
मेरु समान लोह गलि जाय, ऐसी शीत उष्णता थाय॥
तिल तिल करें देह के खण्ड, असुर[8] भिड़ावें दुष्ट प्रचण्ड।

में ३७७३ स्वांस होते हैं)। १ एक शरीरका स्वामी एक ही जीव होता है उसे प्रत्येक वनस्पति कहते हैं। जैसे बड़ी परंतु कच्ची ककड़ी खीरा आदि। २ दो, तीन, चार और पांच इंद्रिय वाले जीव। ३ यह दो इंद्रियजीव अर्थात् कीड़ी आदि। ४ चीटी। ५ नर्क रूपी समुद्र। ६ वहाँ पीव और रक्त तथा कीड़ों के समूह से भरी हुई देह को जलाने वाली नदी बहती है। ७ एक तरह का कांटेदार वृक्ष। ८ भवनवासी देवों में असुरकुमार।

सिन्धु-नीर तैं प्यास न जाय; तौ पण एक न बूंद लहाय ॥
तीन लोक को नाज जु खाय; मिटै न भूख कणां[1] न लहाय ।
ये दुख बहु सागर लौं सहै; कर्म योग तें नर गति लहै ॥
जननी उदर वस्यो नव मास; अङ्ग सकुच तैं पाई त्रास ।
निकसत जे दुख पाये घोर; तिनको कहत न आवे ओर ॥
बालक पन में ज्ञान न लह्यो; तरुण समय तरुणी रति रह्यो ।
अर्ध मृतक सम बूढ़ा पनो; कैसे रूप लखै आपनो ॥
कभी अकाम निर्जरा[2] करै; भवनत्रिक में सुर तन धरै ।
विषय चाह दावानल दह्यो; मरत विलाप करत दुख सह्यो ॥
जो विमानवासी[3] हू थाय; सम्यग्दर्शन विन दुख पाय ।
तहँ तें चय थावर तन धरैं, यों परिवर्तन पूरे करैं ॥

दूसरी ढाल

* पद्धरी छंद *

ऐसे मिथ्या दृग ज्ञान चरण, वश भ्रमत भरत दुख जन्म-मरण ।
तातें इनको तजिये सुजान, सुन तिन संक्षेप कहूँ बखान ॥
जीवादि प्रयोजन भूत[4] तत्व, सरधै तिन माहिं विपर्ययत्व ।

जातिके देव जो तीसरे नरक तक जाकर नारकियों को आपस में लड़ाते हैं और स्वयं प्रसन्न होते हैं। उनका ऐसा ही स्वभाव है। १अनाजका दाना। २बिना इच्छाके समतासे कर्मोंका फल भोगना पश्चात कर्मोंका झड़ जाना। ३स्वर्गवासी देव। ४जीवादि सात तत्वोंका ज्ञान भवबंधनसे छूटनेमें कारण भूत है।

चेतन को है उपयोग रूप, बिन मूरत चिन्मूरत अनूप ॥
पुद्‌गल नभ धर्म अधर्म काल[1], इनतें न्यारी है जीव चाल।
ताको न जान विपरीत मान, करि-करहिं देहमें निज पिछान ॥
मैं सुखी दुखी मैं रङ्क राव, मेरो धन ग्रह गौ धन प्रभाव।
मेरे सुत तिय मैं सबल-दीन, वे रूप सुभग मूरख-प्रवीन ॥
तन उपजत अपनी उपज जान, तन नसत आपको नाश मान।
रागादि प्रगट जे दुःख दैन, तिनहीं को सेवत गिनत चैन ॥
शुभ अशुभ बन्धके फल मभार, रति अरति करै निजपद विसार।
आतम हित हे विराग-ज्ञान, ते लखे आपको कष्ट—दान ॥
रोकै न चाह निज शक्तिखोय, शिव-रूप निराकुलता न जोय।
याही प्रतीति जुत कछुक ज्ञान, सो दुखदायक अज्ञान जान ॥
इन जुत विपियनमें जो प्रवृत्त, ताको जानो मिथ्या—चरित्त।
हैं मिथ्यात्वादि निसर्ग[2] जेह, अब जे ग्रहीत[3] सुनिये सु तेह ॥

---

१ पूरना और गलना जिसका स्वभाव है वह पुद्‌गल है। जिसमें सम्पूर्ण द्रव्यां का निवास है उसे नभ अर्थात् आकाश कहते हैं। जो द्रव्य जीव और पुद्गल को चलनेमें उदासीन रूप से सहायक है वह अरूपी धर्म द्रव्य है। तथा जो जीव व पुद्गल को ठहरने में उदासीन रूप से सहकारी है वह अधर्म द्रव्यअरूपी है। निश्चय काल द्रव्य का स्वभाव सब द्रव्यों के परिर्तन होने में सहाय करने का है, व्यवहार काल रात दिन घन्टे मिनट आदि रूप माना जाता है। २ दूसरों के उपदेश विना प्राप्त होना। ३ दूसरोंके उपदेश द्वारा प्राप्त होना।

जे कुगुरु कुदेव कुधर्म सेव, पोषैं चिर दर्शनमोह एव।
अन्तर रागादिक धरें जेह, बाहर धन अम्बर तें सनेह ॥
धारें कुलिङ्ग[1] लहि महत भाव, ते कुगुरु जन्म-जल उपलनाव[2]।
जे राग द्वेष मल करि मलीन, वनिता गदादिजुत चिह्न-चीन ॥
ते हैं कुदेव तिनकी जु सेव, शठ करत न तिन भव-भ्रमन छेव।
रागादि भाव हिंसा समेत, दर्वित त्रस थावर मरण खेत ॥
जो क्रिया तिन्हें जानो कुधर्म, तिन सरधैं जीव लहैं अशर्म।
याको ग्रहीत मिथ्यात्व जान, अब सुन ग्रहीत जो है अज्ञान ॥
एकान्तवाद[3] दूषित समस्त, विषयादिक पोषक अप्रशस्त।
कपिलादि[4] रचित श्रुतको अभ्यास, सो हैं कुबोध बहु देन त्रास ॥
जो ख्यातिलाभ पूजादि चाह, धरि करत विविधि विधि देह दाह।
आतम अनात्मके ज्ञान हीन, जो जो करनी तन करन छीन ॥
ते सब मिथ्या चारित्र त्याग, अब आतमके हित-पंथ लाग।
जगजाल भ्रमनको देहु त्याग, अब 'दौलत' निजआतम सुपाग ॥

तीसरी ढाल

* नरेन्द्र छंद (जोगीरासा) *

आतम को हित है सुख सो सुख, आकुलता विन कहिये।
आकुलता शिव माहिं न तातें; शिव-मग लाग्यो चहिये ॥

---

१ खोटा भेष। २ ऐसे कुगुरु संसार-सागर में पत्थर की नौका के समान है। एक दृष्टि से वस्तु का विचार करना। ४ कपिल आदि सांख्य-मत के प्रवर्तक।

सम्यग्दर्शन ज्ञान चरण शिव मग सो दुविधि[1] विचारो।
जो सत्यारथ रूप सु निश्चय, कारण सो व्यवहारो[2] ॥
पर द्रव्यन तें भिन्न आप में, रुचि सम्यक्त्व भला है।
आप रूप को जानपनों सो, सम्यक ज्ञान कला है॥
आप रूप में लीन रहै थिर, सम्यक चारित सोई।
अब व्यवहार मोक्ष मग सुनियें, हेतु नियत[3] को होई॥
जीव अजीव तत्व अरु आश्रव, बन्धन संवर जानो।
निर्जर मोक्ष कहे जिन तिन को, ज्यों का त्यों सरधानो॥
है सोई समकित व्यवहारी, अब इन रूप बखानों।
तिनको सुन सामान्य विशेषें, दृढ़ प्रतीति उर आन्यौं॥
बहिरातम[4] अन्तरआतम[5] परमातम[6], जीव त्रिधा है।
देह जीव को एक गिनें, बहिरातम तत्व मुधा है॥
उत्तम मध्यम जघन त्रिविधि के, अन्तर आतम ज्ञानी।
दुविधि सङ्ग[7] विन शुध उपयोगी, मुनि उत्तम निजध्यानी॥
मध्यम अन्तर आतम हैं जे, देशव्रती आगारी[8]।

---

१ सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यग्चारित्र की एकता रूप मोक्षमार्ग दो प्रकार है। २ सत्यार्थ रूप निश्चय है, एवम् सत्यार्थ रूप में कारणभूत व्यवहार कथन है। ३ निश्चय। ४ शरीर और आत्मा की भिन्नता को न समझने वाला मिथ्या-दृष्टी। ५ शरीर और आत्मा की भिन्नता को जानने वाला सम्यग्दृष्टी। ६ परम पवित्र आत्मा। ७ दो प्रकार परिग्रह। ८ किञ्चित व्रत संयम साधने वाले सम्यग्दृष्टी श्रावक।

जघन कहे अविरत समदृष्टी, तीनौं शिवमग–चारी ॥
सकल[1] निकल[2] परमातम द्वै विधि, तिनमें घाति निवारी।
श्री अरहन्त सकल परमातम, लोकालोक निहारी ॥
ज्ञान शरीरी त्रिविधिकर्म[3] मल, वर्जित सिद्ध महन्ता।
ते हैं अमल निकल परमातम, भोगैं शर्म अनन्ता ॥
बहिरातमता हेय जानि तजि, अन्तर आतम हूजे।
परमातम को ध्याय निरन्तर, जो नित आनंद पूजे ॥
चेतनता बिन सो अजीव है, पञ्च भेद ताके हैं।
पुद्गल पञ्च वरण[4] रस[5] गन्ध दो, फरस वसू[6] जाके हैं ॥
जिय पुद्गल को चलन सहाई, धर्म द्रव्य अनरूपी।
तिष्ठत होय अधर्म सहाई, जिन बिनमूर्ति निरूपी[7] ॥
सकल द्रव्य को वास जास में, सो आकाश पिछानो।
नियत वर्तना निश–दिन सो, व्यवहार काल परमानो ॥
ये अजीव अब आश्रव[8] सुनिये, मन वच काय त्रियोगा।

---

१ सशरीर परमात्मा–अर्हन्त। २ पौद्गलिक शरीर रहित ज्ञान–मय आत्मा-सिद्ध। ३ द्रव्यकर्म, नो कर्म, भाव कर्म, इस प्रकार तीन भेद हैं,–ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अन्तराय इन आठों की कर्म रज को द्रव्य कर्म कहते हैं। औदारिक, वैक्रियक, आहारक, तैजस ये चार शरीर नोकर्म हैं। रागद्वेष, मोह ये भाव कर्म है। ४ (वर्ण) रंग। ५ स्वाद। ६ स्पर्श आठ प्रकार का है। ७ कथन किया। ८ मन, वचन, काय ये तीन योग तथा मिथ्यात्व,–

मिथ्या अविरत अरु कषाय, परमाद सहित उपयोगा ॥
ये ही आतम के दुख कारन, तातें इनको तजिये।
जीव प्रदेश बंधें विधि सो सो, बन्धन कबहुँ न सजियें ॥
शम[1] दम[2] तें जो कर्म न आवें, सो संवर आदरीये।
तप बल तें विधि झरन निर्जरा, ताहि सदा आचरिये ॥
सकल कर्म तें रहित अवस्था, सो शिव थिर सुखकारी।
यह विधि जो सरधा तत्वन की, सो समकित विवहारी ॥
देव जिनेन्द्र गुरू परिग्रह विन, धर्म दया जुत सारो।
यहू जान समकित को कारण, अष्ट अङ्ग जुत धारो ॥
वसुमद[3] टारि निवारि त्रिशठता[4], षट अनायतन[5] त्यागो।
शङ्कादिक वसु दोष विना, संवेगादिक[6] चित पागो ॥
अष्ट अङ्ग अरु दोष पचीसों, तिन संक्षेपहि कहिये।
बिन जाने तें दोष गुनन को, कैसे तजिये गहिये ॥

अव्रत, कषाय और प्रमाद सहित आत्मा की परिणति द्वारा कर्मों का आना आश्रव है। १ समता। २ इन्द्रियों के दमन करने से। ३ आठ प्रकार का मद–

दोहा—जाति, लाभ, कुल, रूप, तप, बल, विद्या, अधिकार।
इनको गर्व न कीजिये, ये मद, अष्ट प्रकार ॥

४ तीन मूढ़ता लोक मूढ़ता, देव मूढ़ता, गुरू मूढ़ता। ५ जो धर्म के स्थान नहीं हैं। ६ संवेग–संसार से भय भीत रहना, आस्तिक्य ईश्वर लोक परलोक को मानना। अनुकम्पा दया भाव रखना। उपशम–मन्द कषाय रखना।

जिन-वच में शङ्का न धारि, वृष भव-सुख वांछा भानै।
मुनि तन मलिन न देख घिनावे, तत्त्व कुतत्त्व पिछानै॥
निज गुण अरु पर अवगुण ढांके, वा जिनधर्म वढ़ावे।
कामादिक करि वृष तें चिगते, निज पर को सु दृढ़ावें॥
धर्मी सौं गौ वच्छ प्रीति सम, करि जिनधर्म दिपावें।
इन गुण तें विपरीत दोष वसु, तिनको सतत खिपावें॥
पिता भूप वा मातुल[1] नृप जो, होय न तौ मद ठानै।
मद न रूप को मद न ज्ञान को, तप वल को मद भानै॥
तप को मद न मद जु प्रभुता को, करै न सो निज जानै।
मद धारै तौ यही दोष वसु, समकित कों मल ठानै॥
कुगुरु कुदेव कुवृष-सेवक की, नहिं प्रशंस उचरै है।
जिन मुनि जिन श्रुत विन कुगुरादिक, तिन्हें न नमन करें हैं॥
दोष रहित गुणसहित सुधी जे, सम्यक दरश सजें हैं।
चरितमोह[2] वश लेश न संजम, पै सुर-नाथ जजें हैं॥
गेही[3] पै गृह में न रचें ज्यों, जल तें भिन्न कमल है।
नगरनारि[4] को प्यार यथा, कादे[5] में हेम अमल है॥
प्रथम नरक विन पट भू जोतिष, वान[6] भवन पंड[7] नारी।

---

१ मामा २ चारित्र मोहनीय कर्म के उदय से।
३ ग्रहस्थ। ४ वेश्या। ५ कीचड़। ६ व्यन्तर।
७ नपुंसक।

थावर विकलत्रय पशु में नहिं, उपजत सम्यक धारी ॥
तीन लोक तिहुँ काल माहिं नहिं, दर्शन सो सुखकारी।
सकल धर्म को मूल यही, इस बिन करनी दुखकारी ॥
मोक्ष-महल की पहिली सीढ़ी, या बिन ज्ञान चरित्रा।
सम्यकता न लहै सो-दर्शन, धारौ भव्य पवित्रा ॥
'दौल' समझ सुन चेत सयाने, काल वृथा मत खोवे।
यह नरभव फिर मिलन कठिन है जो सम्यक नहिं होवे ॥

चौथी ढाल

* दोहा *

सम्यक श्रद्धा धारि पुनि, सेवहु सम्यग्ज्ञान।
स्व-पर अर्थ बहु धर्मजुत, जो प्रगटावन भान ॥

* रोला छंद *

सम्यक साथै ज्ञान होय, पै भिन्न अराधौ।
लक्षण श्रद्धा जान, दुहू में भेद अबाधौ ॥
सम्यक कारण जान, ज्ञान कारज है सोई।
युगपत[1] होते ज्यों, प्रकाश दीपक तें होई ॥
तास भेद दो हैं परोच्छ[2], परतछ[3] तिन माहीं।
मति श्रुत दोय परोच्छ, अच्छ मन तें उपजाहीं।
अवधिज्ञान मनपर्यय, दो हैं देश प्रतच्छा[4] ॥

---

१ एक साथ। २ मन और इन्द्रियों के द्वारा होने वाला परोक्ष ज्ञान। ३ जिससे आत्मा स्वयं प्रत्यक्ष जाने। ४ किञ्चित प्रत्यक्ष।

द्रव्य क्षेत्र परिमाण लिये, जानै जिय स्वच्छा ॥
सकल द्रव्य के गुण अनन्त, परजाय अनन्ता।
जानै एकै काल प्रगट, केवलि भगवन्ता ॥
ज्ञान समान न आन, जगत में सुख को कारण।
यह परमामृत जन्म, जरा मृत रोग निवारण ॥
कोटि जन्म तप तपें, ज्ञान विन कर्म झरें जे।
ज्ञानी के छिन माहिं, त्रिगुप्ति[1] तें सहज टरें ते ॥
मुनिव्रत धारि अनन्त, वार ग्रीवक[2] उपजायो।
पै निज आतमज्ञान विना, सुख लेश न पायो ॥
तातें जिनवर कथित, तत्व अभ्यास करीजे।
संसय विभ्रम मोह त्यागि, आपो लखि लीजे ॥
यह मानुष पर्याय सुकुल, सुनिवो जिनवानी।
इह विधि गये न मिलै, सुमणि ज्यों उदधि समानी ॥
धन समाज गजराज वाज, तो काज न आवे।
ज्ञान आपको रूप भये, फिर अचल रहावे ॥
तासु ज्ञान को कारन, स्वपर विवेक वखानों।
कोटि उपाय बनाय, भव्य ताको उर आनों ॥
जे पूरव शिव गये, जाहिं अव आगे जैहैं।
सो सब महिमा ज्ञान तनी; मुनि नाथ कहैं हैं ॥

---

१ मन, वचन, काय की प्रवृत्ति को रोकना। २ सोलह स्वर्गोसे ऊपर के नौ विमान।

विषय चाह दव-दाह, जगत जन अरनि[1] दझावै।
तास उपाय न आन, ज्ञान घनवान[2] बुझावै॥
पुन्य पाप फल माहिं, हरख बिलखौ मत भाई।
यह पुद्गल परजाय, उपजि विनसै फिर थाई॥
लाख वात की वात, यही निश्चय उर लाओ।
तोरि सकल जग-द्वंद फंद, निज आतम ध्याओ॥
सम्यकज्ञानी होय बहुरि, दृढ़ चारित लीजै।
एकदेश[3] अरु सकलदेश[4]; तसु भेद कहीजै॥
त्रस हिंसा को त्याग, वृथा थावर न संहारै।
पर-बध कार कठोर, निन्द्य नहिं वचन उचारै॥
जल मृतिका[5] बिन, और नाहिं कछु गहै अदत्ता।
निज वनिता बिन, सकल नारि सौं रहै विरत्ता[6]॥
अपनी शक्ति विचार, परिग्रह थोरो राखै।
दश-दिश गमन प्रमान; ठानि तसु सीम न नाखै[7]॥
ताहू में फिर ग्राम, गली गृह बाग बजारा।
गमनागमन प्रमाण ठान, अन सकल निवारा॥
काहू की धन हानि, किसी जय हार न चींतै।
देय न सो उपदेश, होय अघ बनिज कृपी तैं॥
कर प्रमाद जल भूमि, वृक्ष पावक न विराधै।

---

१ वन। २ बादलोंका समूह। ३ श्रावकके अणुव्रत। ४ साधु के महाव्रत। ५ मिट्टी। ६ विरक्त। ७ उलंघन करना।

असि धनु हल हिंसोपकरण[1] नहिं दे यश लाधै ॥
राग-द्वेष करतार कथा, कबहूँ न सुनीजै।
औरहु अनरथदण्ड[2] हेतु, अघ तिन्हें न कीजै ॥
धर उर समता-भाव सदा सामायिक करिये।
पर्व चतुष्टय[3] माहिं, पाप तजि प्रोषध[4] धरिये ॥
भोग[5] और उपभोग[6] नियम करि ममत निवारै।
मुनि को भोजन देय, फेरि निज करै अहारै ॥
बारह व्रत के अतीचार[7] पन पन[8] न लगावैं।
मरण समय सन्यास धारि तसु दोष नशावैं ॥
यों श्रावक व्रत पाल स्वर्ग सोलम उपजावै।
तहँ तें चय[9] नर-जन्म पाय मुनि ह्वै शिव जावै ॥

पांचवीं ढाल

* छंद चाल *

मुनि सकल-व्रती बड़भागी, भव भोगन तें वैरागी।
वैराग्य उपावन माई[10] चिन्तें अनुप्रेक्षा[11] भाई ॥

---

१ हिंसा के हथियार। २ व्यर्थ में प्रयोजन रहित पापबन्धकी क्रिया। ३ प्रति महीनेकी २ अष्टमी २ चतुर्दशी। ४ उपवास। ५ जो वस्तु एक बार भोगनेमें आवे, जैसे भोजनादि। ६ जो वस्तु बार-बार भोगनेमें आवे, जैसे वस्त्रादि। ७ दोष। ८ पांच पांच। ९ निकलकर। १० जो वैराग्य उत्पन्न करने में माताके समान है। ११ बार बार विचार करना, भावना।

इन चिन्तत सम-सुख जागै, जिम ज्वलन पवनके लागै ।
जब ही जिय आतम जानै, तबही वह शिव-सुख ठानै ॥
जोवन गृह गौ-धन नारी, हय गय जन आज्ञाकारी ।
इन्द्रीय भोग छिनथाई, सुरधनु चपला चपलाई[१] ॥
सुर असुर खगाधिप जे ते, मृग ज्यों हरि काल दले ते[२] ।
मणि मंत्र तंत्र बहु होई, मरते न बचावै कोई ॥
चहुँगति दुख जीव भरैं हैं, परिवर्तन पञ्च करैं हैं ।
सब विधि संसार असारा, यामें सुख नाहिं लगारा ॥
शुभ अशुभ करम-फल जे ते, भोगै जिय एकहि ते ते ।
सुत दारा[३] होय न सीरी, सब स्वारथ के हैं भीरी[४] ॥
जल पय ज्यों जिय तन मेला, पै भिन्न भिन्न नहिं भेला[५] ।
तौ प्रगट जुदे धन धामा, क्यों ह्वै इक मिलि सुत रामा[६] ॥
पल[७] रुधिर राध[८] मल थैली, कीकश[९] वसादि[१०] तें मैली ।
नवद्वार[११] वहैं घिनकारी, ऐसी देह करैं किम यारी ॥

---

१ इन्द्र धनुष और बिजली समान चंचल है। २ वैमानिक देव, भवनवासी देव, बिद्याधरादि जितने भी हैं उन सब को काल इस प्रकार नष्ट कर देता है जिस प्रकार हिरन को शेर मार डालता है। ३ स्त्री। ४ साथी। ५ दूध और पानी की तरह आत्मा और शरीर मिला हुआ है परन्तु वास्तव में अलग है, एक रूप नहीं है। ६ स्त्री। ७ मांस। ८ पीव। ९ हड्डी। १० चर्बी आदि। ११ दो आंखें, दो कान, दो नाक के छिद्र, एक मुख, एक मल द्वार, एक मूत्र द्वार।

जो योगन की चपलाई, तातैं ह्वै आश्रव भाई।
आश्रव दुखकार घनेरे, बुधिवन्त तिन्हें निरवेरे॥
जिन पुण्य-पाप नाहिं कीना, आतम अनुभव चित दीना।
तिन ही विधि आवत रोके, संवर लहि सुख अवलोके॥
निज काल पाय विधि-झरना, तासों निज काज न सरना।
तप करि जो कर्म खिपावै, सोई शिव-सुख दरसावै॥
किन हू न करौ न धरै को, षटद्रव्य मई न हरै को।
सो लोक माहिं बिन समता, दुख सहै जीव नित भ्रमता॥
अन्तिम ग्रीवक की लौं हद, पायौ अनन्त विरियां पद।
पर सम्यकज्ञान न लाधौं, दुर्लभ निज में मुनि साधौं॥
जो भाव मोह तें न्यारे, दृग ज्ञान व्रतादिक सारे।
सो धर्म जबै जिय धारै, तबही सुख अचल निहारै॥
सो धर्म मुनिन करि धरिये, ताकी करतूति[1] उचरिये।
ताको सुनिये भवि प्रानी, अपनी अनुभूति[2] पिछानी॥

छटवीं ढाल

* छंद (हरिगीता) *

षटकाय[3] जीव न हनन तें, सब विधि दरव-हिंसा टरी।
रागादि भाव निवार तें, हिंसा न भावित अवतरी॥
जिनके न लेश मृषा न जल, तृण हू बिना दीये गहैं।

---

१ क्रिया। २ अनुभव। ३ पृथ्वी काय, जल काय, अग्नि काय, वायु काय, वनस्पति काय, त्रस काय।

अठदशसहस[१] विधि शील धरि, चिद्ब्रह्ममें नित रमि रहैं ॥
अन्तर चतुर्दश भेद बाहिर, संग दशधा तें टलें[२] ।
परमाद तजि चौ कर[३] मही लखि, समिति ईर्या तें चलें ॥
जग सुहित करि सब अहित हर, श्रुति सुखद सब संसय हरें।
भ्रम रोग हर जिनके वचन, मुख-चन्द्र तें अमृत झरें ॥
छ्यालीस दोप विना सुकुल, श्रावक तने घर अशन को ।
लें तप बढ़ावन हेतु नहिं, तन पोषते तजि रसन को ॥
शुचि ज्ञान संयम उपकरण[४], लखि के गहैं लखि के धरें ।
निर्जन्तु थान विलोकि तन, मल मूत्र श्लेपम[५] परिहरें ॥
सम्यक प्रकार निरोध मन वच काय आतम ध्यावते ।
तिन सुथिर मुद्रा देख मृग-गण, उपल खाज खुजावते ॥
रस रूप गन्ध तथा फरस अरु, शब्द शुभ असुहावने ।
तिनमें न राग विरोध पंचेन्द्रिय-जयन पद पावने ॥
समता[६] सम्हारें थुति उचारें, वन्दना जिनदेव को ।
नित रहैं श्रुत-रत करें प्रतिक्रम[७], तजें तन अहमेव[८] को ॥

---

१ अठारह हजार प्रकार का शील। २ अन्तरंग का चौदह-प्रकार और बाह्य दस प्रकार के परिग्रह को त्याग कर। ३ चार हाथ पृथ्वी। ४ शुद्धि का उपकरण कमंडलु, ज्ञानका उपकरण शास्त्र लेखनी आदि, संयमका उपकरण पीछी। ५ खकार। ६ सामायिक। ७ किये हुये अपराधोंका पश्चाताप। ८ शरीर ही मैं हूं, ऐसी अहं भावना।

जिनके न न्हौन न दन्त धोवन, लेश अम्बर-आवरन ।
भू माहिं पिछली रयन में कछु, शयन एकाशन[1] करन ॥
इक बार दिन में लें अहार, खड़े अलप निज-पानि में[2] ।
कच[3] लोंच[4] करत न डरत परिषह, सों लगे निजध्यान में ॥
अरि मित्र महल-मसान कञ्चन-कांच निन्दन थुति करन ।
अर्घावतारन असिप्रहारन में, सदा समता धरन ॥
तपें तप द्वादश[5] धरें वृष दश[6], रतनत्रय[7] सेवें सदा ।
मुनि साथ में वा एक विचरें, चहैं नहिं भव सुख कदा ॥
यों है सकल संयम चरित, सुनिये स्वरूपाचरण[8] अब ।

---

१ एक करवटसे । २ अपने हाथमें । ३ केश । ४ नोंचना (उखाड़ना) ५ बारह प्रकार तप इस प्रकार है— १ अनशन (उपवास); २ ऊनोदर=भूख से कम खाना; ३ वृत्ति परि संख्यान—आहार लेने के लिये जाते समय गृह संख्या का नियम करना; ४ रस परित्याग=रसों का त्याग करना; ५ विविक्त शय्यासन—सावधानीके साथ आसन बिछाना व सोना; ६ काय क्लेश—शारीरिक कष्ट ये बाह्य तप हैं तथा ७ प्रायश्चित—दोषों का पश्चाताप करना; ८ विनय—दर्शन, ज्ञान चारित्र और उपचार विनय पालना, ९ वैयाव्रत रोगी तथा वृद्ध साधु जनों की सेवा करना; १० स्वाध्याय—शास्त्रादि का पठन पाठन; ११ व्युत्सर्ग—शरीर से ममत्व छोड़ना; १२ ध्यान—चिन्तानिरोध कर आत्मस्वभाव का विचार करना ये अभ्यन्तर तप है। ६ दश धर्म-उत्तम क्षमा, मार्दव, आर्जव, सत्य. शौच संयम, तप, त्याग, आकिञ्चन्य ब्रह्मचर्य। ७ सम्यक दर्शन, सम्यक ज्ञान. सम्यक चारित्र। ८ स्वरूपका आचरण अर्थात् एक मात्र आतम स्वभावमें तल्लीनता रूप आचरण (अभ्यास).

जिस होत प्रगटे आपनी निधि, मिटै पर की प्रवृति सब ॥
जिन परम पैनी सुबुधि छैनी, डारि अन्तर भेदिया ।
वरणादि[1] अरु रागादि[2] तें निज भाव को न्यारा किया ॥
निज माहिं निजके हेतु निजकरि, आपको आपै गह्यो[3] ॥
गुण[4] गुणी[5] ज्ञाता[6] ज्ञान ज्ञेय[7] मंझार कछु भेद न रह्यो ।
जहँ ध्यान[8] ध्याता[9] ध्येय[10] को न विकल्प[11] वचभेद न जहां
चिद्भाव कर्म चिदेश कर्ता, चेतना किरिया तहां[12] ॥
तीनों अभिन्न अखिन्न शुध,-उपयोग की निश्चल दशा[13] ।
प्रगटी जहां दृग ज्ञान व्रत यें, तीनधा एकै लसा[14] ॥
परमाण[15] नय[16] निक्षेप[17] को न उद्योत अनुभवमें दिखै ।

---

१ पुद्गलके गुण । २ कर्म और आत्माके संघर्षसे उत्पन्नहुये विकार । ३ अपने में, आत्मा ने अपने लिये, अपने ही द्वारा अपने स्वरूप को स्वमेव पहिचान लिया है। ४ आत्मा के ज्ञान दर्शनादि । ५ ज्ञानादि संयुक्त आत्मा । ६ जानने वाला । ७ जो जाना जाय ८ चित्त की एकाग्रता । ९ ध्यान करने वाला । १० ध्यान का विषयभूत पदार्थ । ११ कल्पना । १२ आत्मा का चैतन्यभाव कर्म, तथा आत्मा ही कर्ता और आत्मा ही क्रिया रूप है। १३ कर्ता कर्म क्रिया की अभेद रूप स्थिति में ही खिन्नता रहित शुद्धोपयोग की अचल दशा है। १४ जहां पर (व्यवहार रूप) सम्यक दर्शन, सम्यक ज्ञान तथा सम्यक चारित्र तीनों, अभेद रूप (निश्चय रूप) प्रगट हुये हैं। १५ प्रत्यक्ष परोक्ष प्रमाण । १६ कथन करने की शैली को नय कहते हैं यह दो प्रकार है द्रव्यार्थिक, पर्यायार्थिक। १७ नाम, स्थापना, द्रव्य, भाव ।

दृग ज्ञान सुख बलमय सदा, नहिं आन भाव जु मो विखै ॥
मैं साध्य साधक मैं अबाधक[1], कर्म अरु तसु फलनि तैं।
चित् पिंड चंड[2] अखंड, सुगुण-करंड[3] च्युत पुनि कलनितैं[4]॥
यों चिन्त्य[5] निजमें थिर भयो, सो अकथ जिन आनंद लह्यो।
सो इन्द्र नाग नरेन्द्र वा अहमिन्द्र कें, नाहीं कह्यो ॥
तबही शुकलध्यानाग्नि करि, चउ घाति-विधि[6] कानन दह्यो।
सब लख्यो केवलज्ञान करि, भवि-लोकको शिवमग कह्यो ॥
पुनि घाति शेष अघातिविधि, छिन माहिं अष्टम भू बसे।
वसु कर्म विनसे सुगुण-वसु, सम्यक्त्व आदिक सब लसे ॥
संसार खार अपार पारावार, तरि तीरहिं गये।
अविकार अकल[7] अरूप शुचि, चिद्रूप अविनाशी भये ॥
निज माहिं लोक अलोक गुण, पर्याय-प्रतिबिम्बित भये।
रहि हैं अनन्तानन्त काल, यथा तथा शिव परिणये ॥
धनि धन्य हैं जे जीव, नर भव पाय यह कारज किया।
तिन ही अनादी भ्रमन-पञ्चप्रकार[8] तजि वर सुख लिया ॥
मुख्योपचार दुभेद[9] जे, बड़भाग रतनत्रय धरें।

---

१ बाधा रहित। २ ज्ञान का पुञ्ज, प्रकाशमय। ३ ज्ञानादिक गुणों का पिटारा। ४ पापों से रहित हैं। ५ इस प्रकार चिंतवन करके। ६ चार घातिया कर्म। ७ पौद्गलिक शरीर रहित। ८ द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव, और भाव। ९ मुख्य (निश्चय) उपचार (व्यवहार)।

अरु धरेंगे ते शिव लहैं तिन, सुयश-जल जग-मल हरें ॥
इमि जानि आलस हानि साहस ठानि यह सिख आदरौ ।
जब लों न रोग ज़रा गहै, तब लों झटिन निजहित करौ ॥
यह राग आग दहै सदा, तातैं समामृत[1] सेइये ।
चिर भजे विषय-कषाय अब तो, त्यागि निजपद वेइये ॥
कह रच्यो पर-पदमें, न तेरो–पद यहै क्यों दुख सहै ।
अब 'दौल' होहु सुखी स्व-पद रचि, दाव मति चूकौ यहै ॥

* दोहा *

इक नव वसु इक वर्ष की, तीज शुकल वैसाख[2] ।
कह्यो तत्व–उपदेश यह, लखि बुधजन की भाख ॥
लघु धी तथा प्रमाद तैं[3], शब्द अर्थ की भूल ।
सुधी सुधार पढ़ौ सदा, जो पाओ भव–कूल[4] ॥

---

१ समता रूपी अमृत । २ विक्रम सम्वत् १८९१ की वैसाख सुदी तीज (अक्षय तृतिया) । ३ बुद्धि की मंदता अथवा असावधानी से । ४ संसार भ्रमण का किनारा ।



धनि धनि 'दौल'.....

धनि धनि 'दौल' सुकवि धी-धारी ।
भविजन-हृदय-कमल विकसावन, काव्य-ज्योति विस्तारी ।।
सत्श्रद्धानी, सम्यकदर्शी, चारित-ज्योति प्रसारी ।
गृहवासी पर रहे उदासी, तुम समरस संसारी ।।
जिनवर गुण रति, विषय विरति अति, दुठ दुरमति गति टारी ।
अचित द्रव्य में लुप्त सुप्त चित अक्षय राशि निहारी ।।
अन्तर्दृष्टा भव्य कल्पना-नभ के सुहृद विहारी ।
शुभ सृष्टा विराग मरुथल में सुरुचि-सरित् मनहारी ।।
भाव-भाव क्या शब्द-शब्द पर भविजन मन बलिहारी ।
हैं 'वीरेन्द्र' सूर्य शशि जब तक, तब तक कीर्ति तुम्हारी ।
धनि धनि 'दौल' सुकवि धी-धारी ।।

